॥ ओ३म् ॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सगमेमहि ॥ ऋ० ५-५१-१५

बिखरे सुमन

तृतीय बार 1100]　　2053 विक्रमी　　[मूल्य 5-00 रुपये

॥ ओ३म् ॥

प्रकाशकों का धन्यवाद

प्रस्तुत पुस्तक बिखरे सुमन का यह तृतीय संस्करण है। इसके प्रथम संस्करण को छपवाने में श्री महात्मा व्यास देव जी वा० तथा श्री हरीचन्द चन्द्र प्रकाश जी (दिल्ली में लोहे के व्यापारी) ने अपनी सहायता प्रदान की थी। इसका दूसरा संस्करण छपवाने में ग्राम माजरा जिला करनाल के श्री धर्म जी श्री पूर्ण जी खुराना ने अपने पूज्य पिता स्व० गिरधारी लाल जी खुराना की पुण्य स्मृति में आर्थिक सहायता देकर पुण्य लाभ किया था।

अब यह तृतीय सस्करण छप रहा है। इसमें आश्रम के कर्मठ प्रगल्भ प्रवक्ता कर्मचारी श्री जवाहर लाल जी सोंधी के प्रशंसनीय प्रयत्न से निम्न प्रकार धन प्राप्त हुआ—

१०००/- श्री केवल राम जी गोगिया, गाजियाबाद
७५०/- श्री दयालचन्द जी ,, ,,
७५०/- श्री मनोहर लाल जी ,, ,,
४००/- श्री रामसहाय जी ,, ,,
५१००/- श्री रामरत्न लाल जी, गाजियाबाद

इन सब श्रद्धालु दान दाताओं का अनेकश: धन्यवाद।

(शेष अन्तिम कवर पृष्ठ ३ पर)

॥ ओ३म् ॥

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ।।ऋ० ५-सू ५१

बिखरे सुमन

अर्थात्

पूज्यपाद् श्रीयुत महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

के कतिपय उपदेशों का संग्रह

तृतीय बार

२०५२ विक्रमी

प्रकाशक :

वैदिक भक्ति साधन आश्रम,

आर्य नगर, रोहतक ।

मुद्रक :

ग्रेजुएट प्रिंटिंग प्रैस

देहली रोड, रोहतक फोन : 42673

ओ३म्

बिखरे सुमन

विषय सूची

ओ३म्

भूमिका

श्रद्धांजलि

परम श्रद्धेय वन्दनीय स्मरणीय श्रीयुत पूज्यपाद महात्मा प्रभु आश्रित स्वामी जी महाराज के पवित्र नाम से आज आर्यसमाज तथा हिन्दू समाज का कोई व्यक्ति अपरिचित नहीं होगा। आपने अर्ध शताब्दी से कतिपय वर्ष ऊपर के तप, त्याग तथा योगाभ्यास से जो कुछ प्राप्त किया है वह इस समय विख्यात होरहा है। उनके अनुभवगम्य विचारों तथा भावों की झलक उनके सरल, सुगम, स्पष्ट, हृदयस्पर्शी भाषणों से तथा उनकी रचित कृतियों से भलीभांति प्रतीत होती है।

परिचय—

सेवक को श्री गुरुदेव जी के चरणों में रहने का १२ वर्ष से सौभाग्य प्राप्त है। आज से लगभग १० वर्ष पूर्व जब भक्ति साधन आश्रम टोबा टेकसिंह में चारों वेदों का यज्ञ हो रहा था, मैं उस समय श्री महाराज जी के सदुपदेशों के पूरे-पूरे नोट ले रहा था तो एक अभ्यासी सज्जन श्री लाला हेतराम जी ने इच्छा

प्रकट कि यदि यह उपदेश छपवा दिए जाएं तो जनता को बड़ा लाभ होगा। इस बात पर तनिक विचार भी न किया कि यह कार्य एक अनाड़ी पुरुष से कैसे सम्भव हो सकता है।

बीज बोया गया—

परन्तु जो बीज बोया जाता है, वह आवश्यक नहीं कि उस समय अथवा शीघ्र ही फूट पड़े। उस समय तो मैं जानता ही न था कि बीज बोया गया है और इसकी सिंचाई तथा रक्षा आदि के कार्य का सौभाग्य मुझे ही मिलेगा। बीज के अंकुरित होने के लिए अनुकूल वातावरण योग्यता, सहयोग और चौकीदारी चाहिए। श्री महाराज जी की कृपादृष्टि तो तब से ही चली आती है और मैं समझता हूं कि दिनों दिन वृद्धि कर रही है और मैं उनके बहुत समीप आरहा हूँ। उत्तेजना मिलती रही।

आपने समय-समय पर उन प्रवचनों के पूरे नोटों को ध्यानपूर्वक सुना और त्रुटियों को दूर कराकर यथोचित संशोधन करा दिया और प्रकाशन की अनुमति प्रदान की। कई एक महानुभावों ने भी आग्रह किया परन्तु अभी काल अनुकूल न हुआ। गत वर्ष के

आरम्भ में श्री महाराज जी ने यह शब्द लिखे 'कि यह भी गुरुभक्ति है' तब से नया Impetus मिला और मैं उन बिखरे हुवे सदुपदेशों को छपवाने के स्थायी प्रबन्ध की खोज में लग गया।

झांसे में आ गया—

राजस्थान के रेतीले प्रान्त में यज्ञ का अलवर से निमन्त्रण आया, बजाजा बाजार आर्यसमाज की ओरसे श्री इन्द्रसेन जी प्रेमी तथा श्री बेलीराम जी सचदेव ने कई एक उत्साही नवयुवकों को साथ लेकर यज्ञ कराया। यज्ञ में वेदवाणी से प्रभावित हो 'आगे बढ़ो' के सम्पादक महोदय ने कई एक व्यसनों का परित्याग कर दिया और यज्ञ और गायत्री का उपासक बन गया। वैदिक भक्ति साधन आश्रम रोहतक में जून १९५२ में गायत्री जयन्ती महोत्सव मनाया जा रहा था, आपने उदारता से प्रस्ताव किया कि श्री महाराज जी के यह उपदेश और आगे जो-जो जहां-जहां भी होंगे अक्षरशः 'आगे बढ़ो' में छापे जायेंगे। मैं झांसे में आ गया। श्री महाराज जी से स्वीकृति ले दी। सम्पादक महोदय ने 'गायत्री जयन्ती अंक' तो निकाला और वेद सप्ताह (अगस्त १९५२) के दिनों में जनता की भेंट किया। भक्तों ने पसन्द किया और कई एक स्थायी ग्राहक भी

बन गए। ग्राहक बनाने में मेरा और श्री प्रेमी जी का हाथ है। जयपुर सितम्बर में हम यज्ञ कराने गये, वह महोदय हमारे साथ रहा और श्री महाराज जी के उपदेशों के नोट लेता रहा। परन्तु

धोखा था—

यह सब दम्भ था। हमारे जयपुर से चले आने के बाद उनकी नियत में कुछ परिवर्तन होगया और मुझे पता चला कि यह धोखा था। अब मुझे बड़ा दुःख हुआ और है यद्यपि मैं प्रयत्न कर रहा हूं कि चन्दा वापस मिल जाए, लेकिन कुछ कह नहीं सकता।

विचार बदला—

ऐसी स्थिति सदा के लिए तो नहीं हो सकती थी, अतः पुनः विचार बदला और धारणा करली गई कि अब प्रकाशन की सारी जिम्मेदारी अपने हाथ में लेकर इस कार्य को आरम्भ करूं।

हर्ष समाचार—

श्री महाराज जी के भक्तों यज्ञप्रेमियों, स्वाध्यायशील सज्जनों, आत्मिकोन्नति के इच्छुक पथिकों को जानकर हर्ष होगा कि अब वह कार्यक्रम सुचारु रूप से प्रारम्भ कर दिया है। श्री महाराज जी के कुछ सद्-

वचनों, संदेशों और अमृतभाषणों को "बिखरे सुमन" के रूप में छपवाया जारहा है।

जनता का कर्त्तव्य—

जनता का भी कुछ कर्त्तव्य है। श्री महाराज जी की पुस्तकों से कोई आर्थिक लाभ नहीं उठाया जाता, सन्तप्त हृदयों को तृषा शान्त करवे, भटकों को मार्ग दर्शावे, साधकों को साधना सम्बन्धी ज्ञान करावे, शिष्टाचार, गृहस्थ सुधार, वेद प्रचार आदि शुभ संकल्पों से प्रेरित होकर यह प्रकाशन कार्य किया जाता है। इसके लिए सहयोग की आवश्यकता है।

प्रकाशन के लिए कोई स्थायी धनराशि हमारे पास नहीं, परन्तु परोपकार का यह कार्य बन्द भी नहीं हो सकता।

अब पुस्तक परिचय—

इस में बड़े उत्तम-उत्तम विषय दिये हैं। गृहस्थियों के लिए उपदेश, प्राणायाम की उपयोगिता, यज्ञ और गायत्री के लाभ, मनुष्य किन पांच भूलों का शिकार है, कैसे दूर हों, मन्यु और क्रोध में क्या अन्तर है, मन्यु कैसे प्राप्त हो, नामदान किसे कहते है, पितृयज्ञ

क्यों करें और कैसे करें, कलियुग का त्यागी तपस्वी ऋषि दयानन्द, आर्यसमाज की उन्नति कैसे हो, वेदोपदेश, अनमोल मोती आदि विषय इस पुस्तक में पढ़ने को आपको मिलेंगे। विषय सूची विस्तार से दी गई है। पढ़िए, जीवन सफल बनाइए और प्रभु के आशीर्वाद के पात्र बनिये।

नोट—यह सारा संग्रह प्राय सेवक का ही किया हुआ है।

विनीत—
सत्यभूषण
वानप्रस्थी आचार्य

वैदिक भक्ति साधन आश्रम
रोहतक
१२ फाल्गुन २००६ चन्द्रवार

वे महान थे

महात्मा जी हमारे प्रमुख शिष्य थे और हमारे में उनकी अनन्य निष्ठा और भक्ति व श्रद्धा थी। वे गत १३ वर्ष से हमारे मिशन की पूर्ति कर रहे थे। उनकी निष्ठा और सेवा अद्वितीय थी। वे परम वीत-राग, तपः पूत और आत्मनिष्ठ थे। वे हजारों पतितों के परित्राता, आर्यों के आर्तिहर्ता, धर्म के उद्धारक और सभ्यता तथा संस्कृति के सुधारक थे। वे भारत की पावन परम्परा के प्रतीक थे। उनके ब्रह्म हो जाने से राष्ट्र की जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति होना असम्भव है।

वे विद्वान तथा ऊंचे दर्जे के लेखक थे। उनके ग्रन्थों के अध्ययन से हजारों पथ-भ्रष्टों को सन्मार्ग लाभ हुआ है उनका जीवन निर्माण हुआ है और वे देश तथा जाति के लिए उपयोगी सिद्ध हुए है। जो धर्म विमुख थे वे धर्माभिमुख हो गए जो भक्ति से कोसों दूर थे वे परम भक्त बन गए और जो पतित थे वे पावन बन गए। उनकी लेखनी में ओज था शक्ति

थी तथा प्रभाव था। इनकी भाषा मर्म-स्पर्शी तथा प्रभावशालिनी है।

इनका जीवन एक खुला ग्रन्थ था। शिष्यों के लिए आचार व्यवहार, भक्ति, निष्ठा और तप का वृहद कोष था। महात्मा जी को अपने शिष्यों को उपदेश देने की विशेष आवश्यकता न थी। वे इनके व्यवहार, आचरण और इनकी भगवद्-निष्ठा, इनके तप, त्याग, ज्ञान-ध्यान तथा सादगी से मौन भाव से शिक्षा ग्रहण करते थे। विनम्रता, संवेदना, सहानुभूति, सादगी और सेवा महात्मा जी के जीवन की बहुत बड़ी विशेषताएं थीं। इनकी भक्ति निष्ठा यज्ञ प्रणाली, की इनके शिष्यों पर बहुत गहरी छाप है। इन्होंने गायत्री अनुष्ठान और अराधना का विशेष रूप से प्रचार और प्रसार किया है। इनके भक्तों के गृहों में यज्ञाग्नि गत बीसों साल से प्रज्वलित है और पीढ़ियों से चली आ रही है। प्रभु सभी को उनके मार्ग पर चलने की प्रेरणा करें।

शुभचिन्तक :

योगेश्वरानन्द सरस्वती

महात्मा प्रभु आश्रित जी

मधु मतीर्नं इषस्कृधि (य । ७२)
हमारी अभिलाषाओं को मधुरीली कर ।।

भगवन् स्वस्ति ।

महात्मा प्रभु आश्रित जी के निधन की सूचना मिलते ही मेरे मुख से निम्न शेर निकला था :—

तुम गये और सबको जाना है ।
तुम सा लेकिन कहाँ से आना है ।।

उनके स्थान की पूर्ति इस लिए असम्भव है कि अपनी गुरुता को लघुता के लिबास में छिपाकर रखने की क्षमता उनमें थी । संसार तो अपनी लघुता पर गुरूता का लिबास पहनाता है ।

वह आदि से अन्त तक शिशुवत् मासूम, चन्द्रवत् चन्द्रित, पुष्पवत् आह्लादित, गंगानीरवत् निर्मल रहे । पतित पावन तो वह थे ही । असंख्य मलिन जीवनों और परिवारों को उन्होंने निर्मल बनाया है ।

उनके भक्तों के लिए मैं मंगल कामना करता हूं ।

—विद्यानन्द विदेह

॥ ओ३म् ॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

॥ ओ३म् ॥

बिखरे सुमन

गृहस्थियों के लिये उपदेश

यज्ञ और प्राणायामादि की उपयोगिता

परमेश्वर ने मनुष्य योनि पूर्ण बनाई। उसकी पूर्णता उसकी इन्द्रियों से है। कई प्राणी ऐसे हैं जिनकी आँखें नहीं जैसे बिच्छू। कई ऐसे हैं जिनके कान नहीं जैसे पक्षी। कई ऐसे हैं जिनके हाथ नहीं जैसे पशु पक्षी आदि, परन्तु किसी की भी वाणी तथा बुद्धि नहीं। परमेश्वर ने मनुष्य को बुद्धि, वाणी, हाथ और इन्द्रियां सारी की सारी दीं जिनके द्वारा ज्ञान प्राप्त हो सकता है और हम कर्म करते हैं। यदि हमारे आंख और कान न हों तो हम बेकार हैं। साधन इसलिए दिए कि हम उस पूर्ण प्रभुके साथ पूर्ण हो जायें। हम

अशुद्ध हैं, इसलिये कि हमारा प्रकृति के साथ मेल है जो अपूर्ण है। अतः अत्यन्त शुद्ध के संग से ही पूर्ण हो सकते हैं।

तीन मार्ग—

इसके लिए परमेश्वर ने तीन रास्ते (मार्ग) बताये।

एक बनाया प्राणायाम, इससे आत्मा के अन्दर बल उत्पन्न होता है।

दूसरी बताई गायत्री, जो मनुष्य को स्वतन्त्र कर देती है।

तीसरा बताया यज्ञ, जो सुगन्धित पदार्थों से अन्न जल, पृथिवी, वायु को शुद्ध करता और अन्तःकरण को पवित्र बनाता है।

आवश्यकता इस बात की है तीनों को अपना लिया जाये, नहीं तो जो अनुकूल पड़े, वह अपना लें।

यज्ञ करने वाले को पाँच चीजें मिलती हैं जैसा कि इस मन्त्र में दर्शाया है।

अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥

पहली वस्तु है चमक, कांति। शरीर कांतिमान्,

रूपवान् तथा सुन्दर सुडौल मिलता है। साथ ही निरोगता प्राप्त होती है। निरोगता एक मूल्यवान् देन है।

दूसरी वस्तु जो यज्ञ से मिलती है वह है प्रजा, सन्तान। ऐसी सन्तान जिसको वेद ने कहा सुख के देने वाली हो और हमारी आंखों के सामने मरने वाली न हो। 'प्रजा' दो शब्दों से बना है प्र और जा से। 'जा' के अर्थ हैं जय को प्राप्त करनेवाली। सन्तान भीरू और कायर न हो, हर संग्राम में विजय प्राप्त करने वाली हो। परतन्त्र न हो। 'प्र' पूर्ण आयु के भोगने वाली हो।

तीसरी वस्तु है दूध। दूध मिलता है पशुओं से याज्ञिक के पास अश्वमेव दूध रहेगा, आलस्य से पशु न रक्खे उसकी इच्छा।

चौथी वस्तु है ब्रह्मवर्चस। ब्रह्म के अर्थ हैं परमात्मा अथवा वेद। जिसको विद्वानों का, महात्माओं तथा सन्तों का अपने आप वास मिलता रहे, जहां परमेश्वर का नाम सदा मिले, उसके अहोभाग्य हैं। जहां प्रतिदिन हवन हो वह बिना वेद वाणी के नहीं हो सकता। यही परमात्मा का नाम लेना, पढ़ना ब्रह्मवर्चस है।

पांचवीं वस्तु है अन्न। वह गृह अन्न से खाली नहीं रहेगा जहां नित्य हवन होता है। गृहस्थी को इन्हीं चीजों की आवश्यकता है।

हमारे ऊपर कितना ऋण है। जो मनुष्य प्रसन्नता-पूर्वक ऋण चुका देता है उसकी साख बनी रहती है और जो अदा नहीं करता उसकी साख नहीं रहती, अपयश होता है। इसलिए वेद नें कहा कि अविद्या और अभिमान के कारण विद्या और वायु का विनाश मत करो। परमेश्वर की प्राणप्रद वायु जिससे हमें जीवन मिलता है उसको हम अशुद्ध करते हैं। मुख से, नाक से, चक्षु से, पसीने आदि से जो मैल हमारे भीतर से निकलती है उससे वायु अशुद्ध हो जाती है। मल-मूत्र विसर्जन से जो दुर्गन्ध निकलती है, उसको हम स्वयं नहीं सह सकते. तो अन्य लोग कैसे सहेंगे। ऐसी दूषित वायु सारे संसार के प्राणी सेवन करेंगे और हम पापी बन जायेंगे। जैसे एक मिर्च को यदि अग्नि में डालें तो जहां सब खासने लग जायेंगे वहां हमें अपशब्द कहेंगे। जहां गन्दगी अथवा मल पड़ा हो वहां से मनुष्य नासिका बन्द करके गुजरता है। वेद नें कहा प्रमाद मत करो, जितना अन्न, जल, वायु को अशुद्ध करते हो उतना शुद्धि भी करो, रोज का ऋण रोज ही चुकाते

चले जाओ, जो नित्यप्रति हवन द्वारा वायु को शुद्ध करता है मानो वह अपना दैनिक ऋण चुका रहा है और अगले जन्म में वह इस ऋण से मुक्त होगा। आजकल तो घर-घर में टट्टियां हैं, उस दुर्गन्ध के परमाणुओं का हम पर प्रभाव पड़ता है परन्तु जिस प्रकार भंगी घर में मल के ढेर रखते हुए भी दुर्गन्ध से नाक भौं नहीं चढ़ाता और उसे अनुभव भी नहीं होता कि वह दुर्गन्ध है और मेरे मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डाल रही है, ठीक इसी प्रकार की टट्टियों के दूषित परमाणुओं को हम लोग इतने सह जाते हैं कि फिर हमको कोई कष्ट प्रतीत ही नहीं होता। यही कारण है कि हमारी बुद्धि का ह्रास हो रहा है।

शास्त्रकारों ने कहा कि पाखाने (शौच) पर मिट्टी डाल दें ताकि मल पर मच्छर, मक्खी बैठकर विष न फैलायें।

महायज्ञ

अग्नि के द्वारा किया हुआ यज्ञ वायु और पदार्थ के परमाणुओं तथा गन्ध को बहुत दूर तक ले जाता है, अतः हम ऋण से मुक्त हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति को देवता आशीर्वाद देते हैं। इसका नाम रखा पञ्च महा-

यज्ञ। पूर्णमासी से अश्वमेघ तक सब यज्ञ हैं परन्तु दैनिक हवन एक महायज्ञ है इसलिए कि राजा भी करता है और रंक भी करता है। हवन यज्ञ के करने से अहंकार नहीं होता। 'इदं न मम' का पाठ यही शिक्षा देता है। घर में अच्छे पदार्थ खाने वाला अहंकार नहीं करता परन्तु दूसरों को खिलानेवाला अहंकार करता अर्थात् जो कार्य सबके लिए किया जाता है वह महान् है और उसमें अहंकार नहीं होता। अहंकार के अभाव से ही मनुष्य महान् कहलाता है। महात्मा गांधी, महर्षि दयानन्द, शंकराचार्य आदि महान पुरुष कहलाये क्योंकि उनके अन्दर अहंकार न था। श्रीबिड़ला जी इस समय बड़े दानी हैं परन्तु वे महापुरुष नहीं कहलाते। जिसका उपकार अहंकार रहित है, वह महान् कहलाता है। यज्ञ कितनी उत्तम वस्तु हुई। अल्प-सी मात्रा देकर परमेश्वर से हम पांच वस्तुओं के अधिकारी बन जाते हैं। कौन ऐसा मनुष्य है जिसको यह आवश्यकता नहीं। परन्तु हम करते नहीं। प्रतिदिन श्रद्धा से दें, भावना से दें तो हमारा कार्य सिद्ध हो जावेगा। कोई विरला निकलेगा जो हवन करता हो।

पर परमेश्वर पर हमें विश्वास नहीं। जब तक विश्वास न हो प्रेम नहीं हो सकता। जितना विश्वास

बढ़ेगा उतना प्रेम बढ़ेगा। परमेश्वर से हमारा प्रेम नहीं क्योंकि उस पर विश्वास नहीं, आदमी पर विश्वास है।

जब दाँत न थे तब दूध दियो।
जब दांत दिए तब अन्न न देई हैं?

यह कभी हो सकता है? उस प्रभु की दया का कोई अन्त नहीं। माता के मटके प्रसव से पूर्व ही दूध से भर देता है, यदि बालक के लिए दूध मोल लेना पड़ता तो निर्धन कंगाल स्त्रियों के लिए पालना कितनी कठिन होती। यह प्रभु की अपार दया है जो हमारे जन्म से पूर्व हमारे भोग के साधन उपस्थित कर देता है। ऐसा जानते हुए भी हम उस पर विश्वास नहीं करते। कारण यह कि जो शक्ति परमात्मा ने हमें दी, हम उसका अनुभव नहीं करते।

प्रभु की दात—

शक्ति, प्रेम, विश्वास तीन चीजें प्रभु ने दीं। हमारी शक्ति शून्य है। नवजात बालक की दोनों मुट्ठियां बन्द होती हैं, क्यों? माता मुट्ठी सीधा करना चाहती है, वह रोता है। क्यों? मुट्ठी तब बन्द करते हैं जब अमूल्य वस्तु पास हो, छिपा लेता है, किसी को

देना नहीं चाहता। मुट्ठी बड़ी मजबूत होती है। बालक के पास कोई वस्तु थी जिसे वह देना नहीं चाहता, और अपने पास रखना चाहता है। यह शक्ति उसके पास थी। यदि मनुष्य इस शक्ति को जाने तो उसका प्रभु पर विश्वास हो जाए। बालक की एक मुट्ठी में परमात्मा है और एक में प्रकृति। इसलिए कि वह योगी है। बालक को कड़ी दृष्टि से न देखो, मांसाहारी, जुवारी, डाकू, व्यभिचारी की छाया उस पर न पड़े। योगी को दूसरा जन्म याद होता है, बालक को भी याद होता है। बालक का तालु टप-टप करता है। अंगूठा चूसता है, अंगूठे के चूसने से सलीवा (अमृत) टपकता है, जब तक टपकता है पूर्ण योगी है और बे-खबर योगी है। बालक के सामने क्रीड़ा भी न करो। योग के अन्दर आया अहिंसा का बल है कि वैरी का वैर भी त्याग हो जाता है। बालक के सामने सर्प भी वैर त्याग देता है। बच्चे की मुस्कान परायों को भी हर लेती है। योग की चार निशानियां (चिन्ह) हैं।

१. योग में प्रवेश करने पर समता आ जाती है। बच्चों में समता होती है, हिन्दू मुस्लिम का कोई भेद नहीं, कोई उठाले। २. शांति, ३. सुख और ४ हास्य। मुस्काना जो सबके शोक चिन्ता को दूर कर देती है।

वह योगी है, वह (बालक) राग और द्वेष से शून्य है। परमेश्वर भी उसको प्राप्त हुआ जो राग और द्वेष से रहित है। और प्रकृति भी उसके अधिकार में आई जो राग द्वेष से रहित हुआ। इसका नाम है शक्ति, निष्पाप होना, राग द्वेष से रहित होना। यह शक्ति मनुष्य में बहुत नीचे रहती है। सिर में रहता है अमृत। ज्यों-२ संसार की हवा लगी, माता के विचार उसके अन्दर गये, बालक की शक्ति का ह्रास होने लगा। दूध पिला रही है और क्रुद्ध भी रही है, मानो बालक में विष प्रविष्ट करा रही है। वह शक्ति, जो अमृत थी ऊपर से नीचे दौड़ आई और गुदा के भीतर जहां सेच है, उसमें प्रविष्ट हो गई, दब गई। उस कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिए योगी योग करता है। यह जग जाये तो बेड़ा पार है। परमेश्वर ने पूर्ण साधन दिये कि वह उसके साथ एक हो जाए। प्रभु ने कान, आंख, मन, बुद्धि, वाणी दी, कि इनकी सहायता से एकता प्राप्त कर सके। इसके लिए जरूरत पड़ी प्राणायाम की।

यजुर्वेद अध्याय १३, मं० ५५ के भावार्थ में महर्षि दयानन्द ने लिखा कि 'स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि प्राण का मन और मन का प्राण नियमन करके

वाला है ऐसा जान के प्राणायाम से आत्मा को शुद्ध करते हुए पुरुषों से सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें।

तो आत्मा की शुद्धि के लिए प्राणायाम किया जाता है। रावण ने वायु आदि भौतिक देवताओं को वश में किया परन्तु प्राणों पर अधिकार प्राप्त न कर सका। भीष्म पितामह ने प्राणों पर इतना अधिकार प्राप्त किया हुआ था कि शरशय्या पर पड़े हुए भी मृत्यु को अपने समीप न फटकने दिया। जब उत्तरायण काल आया तो अपनी इच्छा से प्राण त्यागे।

मनु महाराज ने कहा है कि प्राणायाम से एक बल पैदा होता है जो सर्व वासनाओं को दग्ध कर देता है और वह शक्ति जगकर ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचती है। जो प्राण मनुष्य लेता है, यदि वह सारा बाहर निकाल दे तो मनुष्य का जीवन भी समाप्त हो जाए। इससे स्पष्ट है कि कुछ न कुछ प्राण अन्दर रह जाता है, वह स्वाभाविक कुम्भक है। यह परमात्मा द्वारा प्राणायाम है, संकल्प तथा इच्छा से नहीं। मनुष्य संकल्प द्वारा कुम्भक करे।

इंजन सहस्रों मन भार उठाता है। भाप को बन्द कर दिया जाता है, कुम्भक करते हैं तब रेल

चलती है। साईकिल का पहिया, मोटर का पहिया तब चलता है जब उसके अन्दर वायु का कुम्भक किया जाता हैं। तनिक मात्र वायु निकल जाने पर, मोटर साईकल नहीं चल सकती। प्राणायाम करेंगे, तो उससे बल आकर हमें चलने की शक्ति आयेगी। वायु अन्दर भरने से वायु के गुण, कर्म, स्वभाव अपने अन्दर आते हैं। वायु का गुण है स्पर्श। भूतमात्र को जड़ तक को भी, मुझ को भी स्पर्श करेगी। यदि जड़ दीवार को वायु न मिले तो गिर जायेगी। जो मकान सदा बन्द रहता है वह शीघ्र गिर जाता है।

वायु का स्वभाव है सम रहना। हमारे अन्दर आयेगी समता। जो बालक के अन्दर थी वह हमारे अन्दर आयेगी। यह प्राणायाम का फल है। लाख यत्न करे कि सम हो जाऊं, नहीं हो सकता जब तक प्राणा-याम न करे। जल में,पृथ्वी में समता नहीं,समता केवल वायु में है। वायु को एक प्रकार से सब नमस्कार करते हैं। जब चलती है, वृक्ष झुक जाते हैं। पवन गुरु है। पृथ्वी जल, अग्नि को भोले मनुष्य नमस्कार करते हैं।

वायु का कर्म है निरन्तर चलते रहना। सूर्य, जल, पृथिवी, अग्नि निरन्तर उपकार करते हैं। प्राण वायु सदा चलती रहती और जीवन प्रदान करती है।

एक क्षण भी हम से पृथक् नहीं होती। ठहर जाए, हिलने से तुरन्त आ जाती है। प्राणायाम करने वाले का जीवन संसार के लिए ही हो जाता है। प्राणायाम प्रभु की देन है। वेद ने स्वयं कहा "अयं दक्षिण: विश्वकर्मा। –य० १३-५५ स्त्री पुरुषों को चाहिए कि प्राणायाम द्वारा आत्मा को शुद्ध करें। २१ दिन विधि पूर्वक प्राणायाम कर लेनेपर बुद्धि बड़ी सूक्ष्म होजाती है। तीन से आरम्भ करके धीरे-धीरे ८० तक चला जाय। बुद्धि से आवरण दूर हो जाता है। करोगें फल पावोगे।

मनुष्य जीवन की सफलता जन्म, औषधि, मन्त्र, तप, समाधि से हो जाती है।

कइयों को जन्म से ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है, पूर्व जन्म के कर्मफल के कारण, वैराग्य जन्म से हो गया।

ओषधि द्वारा भी सिद्धि प्राप्त हो सकती है, ओषधि कई प्रकार की हैं। हिमालय में रहने वाले योगी एक चिता बना देते हैं और ओषधि घोटकर, जिसे सोम अथवा कोई नाम दें, शिष्य के शरीर पर मल देते हैं और जलती चिता में बिठा देते हैं। जब वह ओषधि नितान्त शुष्क हो जाती है, उसको निकाल देते हैं।

मन्त्र द्वारा भी सिद्धि प्राप्त होती है। गायत्री मन्त्र के विधि सहित जाप से सफलता प्राप्त हो जाती है।

तप द्वारा भी वही कार्य सिद्ध हो सकता है। महात्मा गांधी ने तप द्वारा सिद्धि प्राप्त की।

पांचवाँ साधन है समाधि।

वेद कहता है गायत्री वेद का प्राण है। यह वसन्त ऋतु है। वसन्त का यह काम है। शरद ऋतु में धनी लोग घरों के अन्दर बन्द रहते हैं, वस्त्रों का भार कन्धे पर उठाते हैं, वसन्त के आने पर घरों से बाहर निकल आते और वस्त्रों के भार से मुक्त होकर स्वतंत्रतापूर्वक बाहर विचरते हैं। वसन्त बहार है, मन को तरोताजा करता है, आंखों को ठण्डक देता है। गायत्री का भी यही फल है। इससे मनुष्य आवागमन के चक्कर से छूट जाता है और परमेश्वर को प्राप्त करता है।

-: पांच भूलें :-

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि। अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून्॥ अ० ३-२-५

इस मन्त्र में पापवृत्ति को सम्बोधन करके कहा गया है कि (अप्वे परा इहि) हे व्याधि और भय ! पापवृत्ते ! हमारे यहाँ से चली जा। (अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती) इन शत्रुओं के चित्तों को मोहित करती हुई (अङ्गानि गृहाण) उनके शरीरों को जा पकड़ अर्थात् हमें मूढ़ न बना और हमारे शत्रुओं के शरीरों को विमोहित करदे और उनको (शोकैः निर्दह)शोक से भस्म कर डाल। (ग्राह्या तमसा शत्रून् विध्य) निरुद्यम-वृत्ति से और अन्धकार से शत्रुओं को वध डाल, विनाश करदे।

मनुष्य पाप से डरता है और इसलिए उससे छुटकारा चाहता है।

मनुष्य पाप से क्यों डरता है, उसके शत्रु कौनसे हैं जिनका यह विनाश चाहता है और उसके साधन क्या हैं यह देखना है।

मनुष्य और पशुसंसार को देखने में बड़ा भेद प्रतीत होता है। एक वे पशु पक्षी हैं जो परतन्त्र हैं, एक वे जड़ पदार्थ हैं जो यन्त्रवत् हैं जैसे सूर्य आदि जो उस देव के नियमों का पालन करते हैं और एक वे जीव हैं जो मुक्त स्वतंत्र हैं स्वेच्छाचारी हैं। परन्तु मनुष्य को क्या कहें। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मनुष्य

के अन्दर जो आत्मा है वह एक विशेष आत्मा है। पशु का बच्चा पैदा होते ही एक घण्टे के बाद फुदकने और कूदने लग जाता है। भैंस का बच्चा और कुतिया का पिल्ला तो जल में तैरने भी लग जाता है। स्वयं जाकर माता के स्तनों से चिपट जाता और अपनी क्षुधा की निवृत्ति करता है, परन्तु मनुष्य का बच्चा पैदा होते ही निस्सहाय और परतन्त्रता के पाश से ग्रस्त होता है। यह तो जन्म से हर एक बात में शिक्षा और सहायता का मोहताज है। पशु के बच्चे को शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं। वह भा क्ष्याभक्ष्य से अभिज्ञ है, शत्रु और मित्र में पहचान कर सकता है, शत्रु से कभी मित्रता नहीं गाठता परन्तु मनुष्य का बच्चा ऐसा नहीं कर सकता। बच्चा पैदा हो, उसकी झिल्ली दूर की जावे, साफ स्वच्छ करके बच्चे को जहां लिटा दिया जाए पड़ा रहेगा, भूख लग रही हो, रोवेगा पर दौड़कर माता के स्तनों को नहीं चिमटेगा और छाती पर पड़ा हुआ भी स्तनों को नहीं पकड़ सकता जब तक कि माता स्वयं कृपा और दया से द्रवित होकर उसे स्तनों से च लपाये। बच्चे को बिठाना चलना फिरना कूदना आदि हर प्रकार की शिक्षा देनी पड़ती है। इस सर्वशिक्षा के होते हुए भी विरले मनुष्य ही मनुष्य बनते हैं। इसका

प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि पशु तो जन्म से पशु पैदा होता है, मरण पर्यन्त पशु रहता है और पशु का काम करता है. परन्तु इस सृष्टि को उत्पन्न हुए १,६७,४६ २६,०५३ वर्ष बीत गये, मानलो कि एक जन्म में एक सौ वर्ष आयु बीती तो गोया दो कोटि जन्म मिलने पर भी हम अभी मुक्त नहीं हुए और न इससे पूर्व सृष्टि में मुक्त हुए। हमारी उन्नति तो यह हुई कि हम मनुष्य भी न बन सके, नहीं तो वेद हमें न कहता "मनुर्भव" 'मनुष्य बन'। बनना तो हमें देवता था पर हम मनुष्य ही न रह सके। यह अवनति क्यों हुई ? विचार करने से पता चलेगा कि यद्यपि प्रभु ने अपार कृपा करके हमें एक विशेष जन्म दिया और हमें सब योनियों से जिनकी संख्या ८४ लाख बताई जाती है, श्रेष्ठ बनाया और श्रेष्ठता का साधन दिया बुद्धि, परन्तु हमने अपनी बुद्धि का विकास न किया और भूल पर भूल करते गये। जैसा कि ऊपर कह चुके हैं कि पशु अपने शत्रु से मित्रता नहीं करता पर एक मनुष्य ही है जो अपने शत्रुओं से मिलता रहता है और उनकी मित्रता में वास्तविक बात को भूल जाता है। परमात्मा ने इस वेदमन्त्र में आदेश कर दिया कि ऐ मनुष्य ! पापवृत्ति से दूर रह और साधन भी बता दिया। हमने आचरण

न किया इसमें परमात्मा का क्या दोष है ?

गर न बीनद बरोज़ शपराए चश्म ।
चश्माए आफ़ताब रा चि गुनाह ।।

फ़ारसी के कवि ने कहा, जिसका तात्पर्य यह है कि प्रभु ने सूर्य बना दिया कि संसार भर को प्रकाश दे, सूर्य तो प्रकाश करता है यदि चिमगादड़ आंखें मूंदकर दिन के प्रकाश को न देखे तो इसमें सूर्य का क्या दोष है ?

मनुष्य अल्पज्ञ है, भूल तो उसने करनी है. अंग्रेजी में कहा है "To err is human" भूल करना मनुष्य का स्वभाव है। भूल सात्विक, राजसिक और तामसिक तीनों वृत्तियों वाला करता है। सात्विकवृत्ति वाला भूलता है संसार की विषय वासनाओं को और भूलता है अपनी की हुई नेकी को और दूसरों की बुराई को। राजसिकवृत्ति वाला भूलता है अपने मित्र सम्बन्धियों को जब यह निर्धन बन जाते हैं और तामसिकवृत्ति वाला भूलता है भगवान् को, धर्म और श्रेष्ठ कर्म को। परन्तु बड़ी भूलें जो सर्व साधारण में एक जैसी पाई जाती हैं वे पांच हैं।

१–कि हम मौत (मृत्यु) को भूल गये।

२–किये हुए पापों को भूल गये।

३–अपने जन्म के अन्दर भोगे हुये दुःखों को भूल गये ।

४–ईश्वर की दया और न्याय को भूल गये ।

५–सुख सम्पत्ति जो हमें मिली उसके साधन, कारण को भूल गये ।

मेरा यह विश्वास है कि यदि मनुष्य अपने अन्दर से यह भूलें निकाल दे तो बस वह देवता है और ईश्वर प्राप्ति उसके लिए सुगम है अतः क्रमशः एक-एक भूल का तनिक विचार करते हैं :—

१. शास्त्रकारों ने कहा है "हेयं दुःखमनागतम्" आने वाले दुःख का प्रतिकार करो । जो दुःख बीत गया वह गया, जो बीत रहा है वह चला जायेगा । जो अभी नहीं आया उसका विचार और चिकित्सा करो । आने वाला दुःख तो मृत्यु है जो पुनः हमें जन्म देता है । यही आवागमन का चक्र दुःख ही तो है । हम मृत्यु को भूल गये ।

महाभारत में एक कथा आती है कि युधिष्ठर को जंगल में प्यास लगी तो उसने भीमसेन से कहा कि भ्राता कहीं से जल लाओ । भीम ने वृक्ष पर चढ़कर देखा तो एक स्थान पर हरे-हरे वृक्षों का समूह प्रतीत हुआ, उस ओर चल दिया । एक ताल था, ताल

से जल लेने लगा तो यक्ष ने ललकारा कि भीमसेन ! सचेत ! यदि जल लेना है तो मेरे प्रश्नों का पहले उत्तर दो, उत्तर सन्तोषजनक होने पर जल पी सकते हो। यदि बलात्कार करोगे तो मूच्छित कर दिये जाओगें। भीम बली था, अपने बल के आगे उसे किसी की परवाह नहीं थी, इस चेतावनी की उपेक्षा करके बलात्कार जल लेने लगा तो मूछित होकर गिर पड़ा। एक-एक भाई बारी-बारी उस तालाब पर आया और भीम की सी अवस्था को प्राप्त हुआ। सबसे अन्त में युधिष्ठिर आया, युधिष्ठिर ने देखा चारों भाई मूछित पड़े हैं। चकित हो गया। प्यास बुझाने के लिए आगे बढ़ा तो यक्ष की आवाज़ को सुना, धर्मात्मा था, मन में विचार किया कि यक्ष की सम्पत्ति का उपयोग उसकी आज्ञा बिना नहीं हो सकता तो कहा कि महाराज ! फरमाइये क्या प्रश्न है ? तो यक्ष ने बहुत प्रश्नों में से एक यह पूछा "किम् आश्चर्य्यम्"—आश्चर्य क्या है ? तो युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरे।
अपरे स्थातुमिच्छन्ति किमाश्चर्य्यमतः परम् ॥

अर्थात् हम प्रतिदिन देखते हैं कि मरे हुए प्राणी यमालय में जाते हैं और शेष स्थिर रहने की इच्छा

करते हैं इससे बढ़कर और क्या आश्चर्य है ?

भक्त कबीर नें कहा है :—

इक बिन्से इक स्थिर मानें ।
अचरज लखियो न जाई ।।
साधो रचना राम रचाई ।

अर्थात् प्रभु की यह सृष्टि विचित्र है, हम देखते हैं एक मर जाता है, दूसरा समझता है मैंने तो सदा के लिये यहां रहना है कितना आश्चर्य है ।

भगवान् वेद ने तो बड़े सुन्दर शब्दों में चेतावनी रूप में मानव जीवन का सार तथा उसको सफल बनाने के साधनों का वर्णन किया है—

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत् किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ।।

यजु० १२-७९ ।।

हे मनुष्यो ! ओषधियों के समान (यत्) जिस (वः) तुम्हारा (अश्वत्थे) कल रहे वा न रहे ऐसे शरीर में (निषदनम्) निवास है और (वः) तुम्हारा (पर्णे) कमल के पत्ते पर जल के समान चलायमान संसार में ईश्वर ने (वसतिः) निवास (कृता) किया है इससे (गोभाजः) पृथिवी को सेवन करते हुवे (किल) ही (मृषरुपु) अन्न आदि से पूर्ण देहवाले पुरुष को (सनवथ)

ओषधि देकर सेवन करो और सुख को प्राप्त होते हुए (इत्) इस संसार में (असथ) रहो ॥

भावार्थ :—मनुष्यों को ऐसा विचारना चाहिए कि हमारे शरीर अनित्य और स्थिति चलायमान है इससे शरीर को रोगों से बचाकर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का अनुष्ठान शीघ्र करके अनित्य साधनों से नित्य मोक्ष के सुख को प्राप्त होवें। जैसे ओषधि और तृण आदि फल फूल पत्ते स्कंध और शाखा आदि से शोभित होते हैं वैसे ही रोगरहित शरीर से शोभायमान हों।

इस उदाहरण का भाव केवल यह है मनुष्य मृत्यु को भूल गया है। मृत्यु को भूल जाने का कारण कामदेव है जो हमारा बड़ा शत्रु है। एक धनी सेठ का नवयुवक बालक मर गया। अब जिस सेठ का सिर किसी के आगे नहीं झुकता था आज शोक की अवस्था में सब के सामने झुक जाता है। स्त्री पुरुष दोनों रोते चिल्लाते हैं, सिर में खाक रमा रक्खी है। खाना पीना अच्छा नहीं लगता। कार्य व्यवहार भी छूट जाता है परन्तु अभी एक वर्ष ही बीता कि पुत्रोत्पत्ति की बधाई मिलती है। यह पुत्र कहाँ से आगया? यदि मृत्यु याद होती तो एक पुत्र का शोक देख चुका था, स्त्री संग न करता, परन्तु नहीं, कामदेव ने मृत्यु को भुलवा दिया,

वह सब कामदेव की कृपा है। जिसने काम को अपना शत्रु समझा और शत्रु से दूर रहा तो वह मृत्यु के पंजे से बच गया। निस्सन्देह आवागमन का मूल कारण दूसरी भूल 'किये हुवे पापों को भूल जाना है।' पापों को भुला देने का कारण लोभ देवता है। हम देखते हैं कि एक व्यक्ति ब्लैक मार्केट करता है, पकड़ा जाता है, दण्ड पाता है परन्तु छूट जाने पर भी बाज नहीं आता, वही काम करता है। इसी प्रकार चोर चोरी का दण्ड भुगत करके लोभवश चोरी से नहीं रहता।

उदाहरण :—

एक दरजी बड़ा कारीगर था, हर प्रकार के वस्त्र तैयार करता था, बड़ा अच्छा काम चला हुआ था। दैवयोग से रोगग्रस्त होगया। रोग बढ़ता गया, क्लेश भी बढ़ता गया, दुःखी हुआ। एक दिन दरजी को बीमारी में स्वप्न आया। स्वप्न में क्या देखा कि एक बड़ा ऊंचा झण्डा है और उस पर सर्व प्रकार के टुकड़े रंग बिरंगे जो वह चुरा लेता था लगे हुवे हैं। बड़ा भयभीत हुआ और परमात्मा से रुदन करके प्रार्थना करने लगा कि भगवन्! इस बार अवश्य कृपा करके स्वस्थ करदो यह पाप न करूंगा। परमात्मा ने यही प्रार्थना स्वीकार करली। स्वस्थ होगया और दुकान पर

जब आया तो शिष्यों से कह दिया कि किसी के वस्त्रों को न चुराया करो। जब वह (दरजी) भी ऐसा काम करने को हो तो उसे याद दिलादें। कुछ दिनों तक यही रीति प्रचलित रही। एक दिन किसी व्यक्ति ने किमखाब का एक बहुमूल्य वस्त्र सिलवाने के लिये दिया। वस्त्र जहां मूल्यवान था वहां रूपवान् भी था, दरजी के मन में लोभ आगया कि इस कोट से बच्चे की एक बास्कट (बण्डी) भी तैयार हो सकती है, वस्त्र को कैंची उठा कर टुकड़ा काटना चाहा कि शिष्य ने स्मरण करा दिया, रख दिया कि कल काटेंगे। दूसरे दिन भी वैसे ही हुआ। तीसरे दिन शिष्य की अनुपस्थिति में लोभ देवता ने याद दिलाया कि अब समय है, वस्त्र उठाया आंखों के सामने यह ध्वजा भी प्रतीत हुई जिस पर पहले किये पाप की काटें लगी हुई थीं पर लोभ प्रबल था, वस्त्र को इच्छानुसार यह कहते हुवे काट ही लिया कि–"ईं हम बर अलम्"

अर्थात् यह भी उस ध्वजा पर जहां पर सहस्रों पाप किये हैं, वहां एक यह भी।

तीसरी भूल है–अपने जन्म के अन्दर भोगें हुवे दुःखों को भूल गये।

इसका मूल कारण है मोह। इसका प्रमाण

शरणार्थी हैं । पश्चिमी पंजाब में जब मार-धाड़ हुई तो प्रत्येक व्यक्ति ऐसी आपत्ति में प्रभु को स्मरण कर रहा था और प्रार्थना कर रहा था कि भगवन् ! धन सम्पत्ति आदि सब कुछ ले लो इन तीन ही वस्त्रों में सुरक्षित भारत में पहुंचा दो । उस समय पुत्र परिवार नौकर चाकर पशु माया की कुछ चिन्ता न थी, एक शरीर के साथ मोह था और इसके लिए भगवान् के दरबार में सच्चे दिल से पुकार थी, प्रभु ने सुनी परन्तु जब भारत पहुंचे तो सब भोगे हुवे दुःखों को भूल गये और अपनी उदरपूर्ति के लिये मायासंग्रह में इतने ग्रस्त होते गये कि ईश्वर को भी भुला दिया और मोह से मित्रता करली ।

चौथी भूल है परमेश्वर की दया और न्याय को भूल गये ।

वैज्ञानिक तत्त्ववेत्ता कहते हैं कि मनुष्य चौबीस घण्टे में २१६०० श्वास लेता है । यदि परमेश्वर केवल मनुष्य जन्म ही दे देता और श्वास न देता तो हम क्या करते अथवा यदि एक श्वास का एक पैसा देना पड़ता तो सौ श्वास के एक रुपया नौ आने देने पड़ते, सहस्र के पन्द्रह रुपये दस आने । २१६०० के लगभग ३४७॥) देना पड़ता, सेठ बिड़ला जैसे धनी भी शीघ्र असमर्थता

प्रकट करते, और फिर जिसके परिवार में आठ दस व्यक्ति हों वह बेचारा कैसे हजारों का बिल अदा करता ? एक पाई मूल्य होता तो लगभग १२० रु० प्रतिदिन देना पड़ता। एक कौड़ी प्रति श्वास दाम होता तो साढ़े तीन रुपया प्रतिदिन का बिल होता परन्तु यह प्रभु की दया है कि दाम कुछ नहीं लेता और फिर दूसरी दया यह कि हम श्वास अपने अन्दर लेते और निकालते हैं यह काम बिना किसी इच्छा के होता है। यदि हमें श्वास लेने के लिए इच्छा करनी पड़ती तो हम सारा दिन शूं-शूं ही करते रहते। श्वास आने जाने के लिए नासिका बना दी। कान का काम सुनना आंख का देखना, वाणी का बोलना और चखना, त्वचा का स्पर्श नियत कर दिया। एक इन्द्रिय से दूसरी इन्द्रिय का काम नहीं हो सकता, जिस इन्द्रिय का दुरुपयोग करेंगे वह इन्द्रिय छीन लेगा। आंख से बुरा देखेंगे तो अगले जन्म में अन्धे पैदा होंगे। इस प्रकार शेष इन्द्रियों का समझ लीजिए, यह उसका न्याय है।

हम भोजन खाते हैं पेट में जाकर उसका रस, रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा, वीर्य बनता और केश, अनायास बाहर निकलते हैं। हमें इनके लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता। यदि हमें अपने भोजन को रस

आदि में परिवर्तित करने के लिए भट्ठी तपानी पड़ती तो न जाने क्या दुर्दशा हमारी होती ? हम सो रहे हों, बैठे हों, चल रहे हों, श्वास आ जा रहा है, भोजन का रस आदि में परिवर्तन होकर शरीर बन रहा है।

इस दया और न्याय को भुलाने का मूल कारण अहंकार है। अहंकार में आकर मनुष्य किसी के उपकार को नहीं मानता।

पांचवीं भूल है सुख सम्पत्ति आदि के साधन का कारण भूल गये। इस भूल का मूल कारण क्रोध है। बच्चा अभी गर्भ से बाहर नहीं आता कि माता के स्तनों में दूध आजाता है। गर्भ से बाहर आने पर मटके भरे तैयार हैं। भोग उपस्थित है। यदि दूध मोल लेकर बच्चे का पालन किया जाता तो निर्धन से बढ़कर और कौन दुःखी होता ? परन्तु नहीं, प्रभु ने बच्चे के साधन माता को अनायास दे दिए। अन्न खाए, फल खाए, जो भी खाये, उसका दूध रूप में रस बन जाता है। और जब भूखा हो, मटके खोल दे। ज्ञान इन्द्रियां हमें दीं, हम इन बातों को समझें, उपकारी का उपकार मानें परन्तु हमने ज्ञान इन्द्रियों का दुरुपयोग किया। उपकार करने वाले से भी द्वेष करने लगे। यह द्वेष तब बढ़ता है जब क्रोध आता है। क्रोध से द्वेषवृत्ति जागती

है। दूसरे के गुण और समृद्धि को देखकर मनुष्य जल जाता है, ईर्ष्या करता है। यह नहीं सोचता कि वह किस कर्म से बढ़ा है और दूसरे के अवगुण को देखकर उससे घृणा करता है, इसलिए इस क्रोध के कारण से सुख सम्पत्ति के साधन के कारण को भूल जाता है।

हमने देखा कि काम, लोभ, मोह, अहंकार और क्रोध वास्तव में हमारे शत्रु हैं और हमने इनके साथ मित्रता कर रखी है, मानो सुख की लुटिया स्वयं अपने हाथों से डुबो दी है और कष्ट पर कष्ट उठा रहे हैं।

प्रभु करें कि हमें बुद्धि आए कि हम इन भूलों को समझें और शत्रुओं से मित्रता न करके पाप से मुक्त हो जायें। यही वेद मन्त्र का आशय है।

प्रभु की भक्ति ही आत्मा की शक्ति और सम्पत्ति है

(संस्कार विधि के प्रथम तीन मन्त्रों के आधार पर)

शरीर की रचना--हमारे शरीर के अन्दर पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश पांचों भूत हैं परन्तु अल्प मात्रा में। जल संसार में बहुत है, शरीर में उतना नहीं। यही हाल अन्य भूतों का है। अपितु शरीर का ऐसा कोई भाग नहीं कि जिसमें ये पांचों

भूत विद्यमान न हों। प्रभुकी लीला अद्भुत है, इतने बड़े तत्वों को अल्पमात्र मेरे शरीर में भर दिया। इतना होते हुए मेरे अन्दर एक और शक्ति है जो सर्वतः परिपूर्ण है, पांव से शिखा तक, रोम रोम के भीतर परमेश्वर परिपूर्ण रूप से व्यापक है। परमेश्वर अंश मात्र में नहीं भूत तो अंशमात्र हैं। यह जल, अग्नि, आदि अपने सभी गुणों को नहीं रखते। जल का गुण है शान्त, मेरे अन्दर जल मुझे शान्त नहीं कर रहा। मुझे ठण्डक के लिए और जल लेना पड़ता है। अग्नि अन्दर है परन्तु वह प्रकाश का गुण अन्दर नहीं है। वायु अन्दर है, परन्तु सारे गुणों के साथ नहीं। यदि वायु के सारे गुण अन्दर होते तो मुझे बाहर के वायु लेने की आवश्यकता न पड़ती। दूसरी अद्भुत लीला यह कि अग्नि जल, पृथिवी, वायु का अंशमात्र हमारे भीतर रखा। अग्नि किञ्चिन्मात्र शरीर को छू जाये, तो अनुभव करता हूँ कि जल गया। जल की बिन्दू पड़ जाए तो तुरन्त कह उठता हूं, वर्षा आ गई। परन्तु

आश्चर्य–आश्चर्य की बात है कि वह भगवान् जो परिपूर्ण रूप से अपनी शक्तियों सहित मेरे भीतर विद्यमान है, उसका मुझे भान ही नहीं होता। पूजा करता हूँ, तप करता हूं, यज्ञ करता हूँ, सन्ध्या करता

हूं तो भी भान नहीं होता। जल की बिन्दु तो अनुभव करा देती है, प्रभु का भान नहीं होता। कारण ?

कारण—इस रहस्य को समझने के लिए यह जीव मानव देह में आया। महर्षि दयानन्द ने लिखा, 'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।' यदि इस तत्व अथवा तथ्य के अन्दर मैंने परमेश्वर को नहीं डाला, तो मेरी विद्या व्यर्थ है। जब मैंनें परमेश्वर की विद्याओं को प्राप्त कर लिया और व्यर्थ कर दिया तो मेरा जीवन व्यर्थ गया। यदि प्राप्त करके किसी विद्या को सार्थक कर दिया तो सफल हो गया।

एक आवरण—परमेश्वर और मेरे मध्य में एक आवरण है जो हमें नहीं जाननें देता। धन का सामर्थ्य नहीं जो इस परदे को हटा सके। बड़े मल्ल योद्धा सैण्डो आदि अपने शारीरिक बल से इस परदेको न हटा सके। हिटलर जैसा वीर भी न हटा सका। बड़े-बड़े राजे महाराजे इस परदे को न हटा सके। जिनकी वाणी से संसार भयभीत हो जाता है, वे भी नहीं हटा सके। वह ऐसी चीज नहीं जो कठिन हो। उसका न परिमाण है न भार, परन्तु हम से हटाया नहीं जाता।

इसका कारण—सिनेमा के अन्दर भगवान राम

का पार्ट अदा करने एक व्यक्ति आया। वैसे की वैसी वेषभूषा है। जनता ने देखा और कहा कि राम आगये, परन्तु नमस्कार किसी ने नहीं किया। इसलिए अन्दर से आवाज आती है कि यह राम नहीं। परन्तु एक घण्टा पार्ट जो उसने अदा किया तो जनता की अश्रु धाराएं बह निकली और रोमाञ्च खड़े हो गये, परन्तु इतना होते हुए भी नमस्कार किसी ने न किया। कारण, वह तो गोविन्दराम था खोञ्चा बेचने वाला। वह २४ घण्टे राम नहीं रहा इसलिए किसी ने उसको नमस्कार नहीं किया। हमारी पूजा चाहे जप हो, पाठ हो, कोई भी हो गोविन्दराम के पार्ट की तरह है। परन्तु उसके बाद अर्थात् पूजा पाठ की समाप्ति पर वही हमारी मक्कारी, छल-कपट दुकानदारी सब चलती हैं, झूठ बोलते हैं। हमने क्या किया, सिनेमा का पार्ट अदा किया। यदि पूजा करते तो जिस प्रकार अग्नि स्पर्श करते ही हमें चौंका देती है, तो परमात्मा के स्पर्श से भी हमें आनन्द प्रतीत होता। तो बस उसका एक मात्र कारण यही है कि उसके अन्दर जो जनता को उपदेश देता था, राम की भक्ति स्वयं न थी इसलिये प्रभाव न पड़ा। उसने सच्चे हृदय से नहीं किया। वह बना राम उदर पूर्ति के लिए। जिस भाव से उस

ने किया था वह तो पूर्ण होगया। धन तो उसे मिल गया। यदि सचमुच इस भाव से करता कि मैं राम ही हूँ तो उसको लोगों के पास जाने की आवश्यकता ही न थी।

ज्ञान, कर्म, भक्ति, का समन्वय—परमेश्वर की लीला अद्भुत है पर हम समझ नहीं पाते। बाजार में सुन्दर पीला मीठा आम देखा, खरीद लिया। आम का ज्ञान किसने कराया ? छिलके ने कि यह सङ्गतरा नहीं, अनार नहीं, आम है। हमको कैसा प्रिय है। छिलके को उतार कर फेंक दिया। ज्ञान का मूल्य तो इतना ही रहा, जब वह रस जो हम लेना चाहते थे, लिया तो जिह्वा पर जाते ही भगवान् की लीला का गुण गाया कि कितना मीठा रस है। जिसके आश्रय रस आया था, वह गुठली भी फैंक दी परन्तु जिसका मूल्य समझा वह अपने अन्दर ले लिया और वह था रस। जिस प्रकार आम में छिलके गुठली रस के समन्वय होने से आम की कीमत है इसी प्रकार ज्ञान, कर्म और भक्ति के समन्वय से मनुष्य की कीमत है।

वेद आज्ञा—भगवान् ने यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय के अन्तिम मन्त्र में बतलाया कि "हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं"—कि सचाई का अथवा तत्त्व

का मुख स्वर्णीय पात्र से ढका हुआ है। स्वर्ण के देख लेने मात्र से सत्य का रस प्रतीत नहीं हो सकता। ढकना तो ज्ञान कराता है। मध्य में भक्ति रस है। गुठली ने कराया कर्म। आम की लकड़ी, मूल आदि सबको बेकार समझ त्याग दिया। एक रस था जिसे हमने पी लिया। तो यह शुभ कर्म हैं भक्ति को पैदा करने वाले जैसे गुठली आम को पैदा करती है और साथ ही रस भी। यह रस कब पैदा होगा? जिस समय गुठली को भूमि के अन्दर डाल दिया अर्थात् जिस समय गुठली ने अपने आपको अर्पण कर दिया। कर्म ने माता की शरण में अपने आपको अर्पण कर दिया। गुठली गुठली रह जाती यदि अर्पण न करती। मूल बनी, कोंपल बनी, तना बना, वर्ण, रूप गुण सबको मिटा दिया। पृथ्वी के अर्पित होगई। सफेद अंगुरी बन गई। कोई वर्ण न रखा, सबको मिटा दिया। वह बढ़ी नाना प्रकार के अङ्गों में। डण्डी बनी खाकी. पत्ते बने सब्ज, फल लगा, छिलका पीला, रस लाल लाल। फल पका गोल बना। पहले सख्त था, कठोर, रस भी नहीं आया था। जब सूर्य नारायण ने रस को पका दिया, नर्म हो गया। जब पक जाता है तो उसमें नम्रता आजाती है। जब तक सख्ती और कठोरता है नर्मी नहीं आयेगी।

जब मनुष्य रस को चूसेगा, मुख, ओष्ठों, डाढ़ी सब पर रस टपकेगा। वह सारे शरीर को भिगो देगा। जहाँ भी चला जाए उसकी गन्ध आयेगी। वस्त्र पर पड़ जाए, दाग लग जायेंगें। भक्ति रस ऐसे ही सबको भिगो देगा।

ऋषि दयानन्द की आदर्श भक्ति—आदर्श भक्त ऋषि दयानन्द नें आठ प्रार्थना मन्त्र वर्तमान क्रम में लिखकर अनन्य भक्ति तथा योग का पूर्ण परिचय दिया है। अतः सर्वप्रथम कहा कि हे सवितः देव ! मेरे समस्त दुर्गुण जो मुझे मानवता से गिराते और आप तक पहुँचने नहीं देते उनको दूर कर दो और उनके स्थान पर जो भी अच्छे गुण, कर्म, स्वभाव हैं, जिनको मैं नहीं जानता और आप भली प्रकार जानते हैं, प्रदान करो जिससे मैं पापों से बच जाऊं। साधन लिखा। ईश्वर पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए जो हमारी प्रत्येक क्रिया से प्रकट हो। तभी महाराज ने वेदभाष्य लिखते हुए प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव' का आश्रय लिया। उस प्रभु से डरते रहे, जितेन्द्रिय, बलवान आत्मा भी सर्वदा प्रभु से भय खाती रही। वेद-भाष्य ज्वालाप्रसाद, भीमसेन को लिखा रहे हैं, अड़चन

पड़ गई। भगवान् के अर्पण कर दिया, समाधिस्थ हो गये। प्रभु से नाता जोड़ प्रकाश प्राप्त किया और समाधि खुलने पर आते ही कहा, फाड़ दो और अब लिखो।' इसलिए कि कहीं मुझे बल का अभिमान न हो जाए। जिसने राजा की गाड़ी को रोक दिया, जिसका तेज, ओज विद्या सब कुछ था, उसे भय रहता था कि कहीं अभिमान न आ जाए अतः 'विश्वानि देव' का आश्रय लिया। फिर वाणी से तो मिलता नहीं इसलिए 'हिरण्यगर्भः' का मन्त्र प्रस्तुत करके कहा कि एक ही विश्वजगत् का पति है, उस पर विश्वास करो और सकल उत्तम सामग्री से योगाभ्यास तथा अति प्रेम द्वारा विशेष भक्ति करो। परन्तु हमें तो विश्वास है धन पर, जन पर और बुद्धि पर, परमेश्वर पर तो है नहीं। वह दूर चला गया तो उनके रहने का कोई स्थान नहीं। जब वह पास है तो यह (धन आदि) सब कुछ पास है। जब तक बच्चा दूध पीता है, दांत नहीं, एक माता का ही दूध प्यारा है और उसी का आश्रय है। जब दांत निकले तो दूध पर सन्तोष न रहा। माँ ने स्तनों को कटु रस लगाकर दूध को बन्द कर दिया। इसी प्रकार जिस समय भगवान् का भक्त संसार के विषय वासनाओं में लिप्त हो जाता है तो भगवान्

अपनी दूध को बन्द कर देता है। पृथ्वी आदि को सर्व-शक्तिमान् ने किस प्रकार बिना सहारे के थामा हुआ है? यह एक आश्चर्य की बात है। ऐसे आश्चर्यवान् अतुल शक्तिशाली सुखस्वरूप भगवान् के लिए 'कस्मै देवाय हविषा विधेम'—भक्ति विशेष किया करें।

आनन्द कब आता है :-

जब तक भगवान् हमें स्पर्श नहीं करेंगे अथवा हम परमात्मा को स्पर्श न करेंगे, आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। अतः सचमुच यदि हम उस मधुर रस के अभिलाषी हैं तो भगवान् को योगाभ्यास द्वारा बुलायें, छुयें। यजुर्वेद के ११, १२ अध्याय में बतलाया कि नाड़ियों के द्वारा वह समाधिस्थ हो सकता है। आँख आदि इन्द्रियों से नहीं। यह बाहर की चीजें हैं। भगवान् छूएगा, तो नाड़ियों से मल निकल जाएगा। और फिर कहा कि अति प्रेम से भक्ति विशेष किया करें। लोहे को अग्नि स्पर्श कर रही है, गर्म हो जायेगा परन्तु जब उसको अग्नि के भीतर डाल दिया जाय तो प्रकाश हो जाएगा। इसी प्रकार योगाभ्यास से ज्ञान प्राप्त होगा, परन्तु रस तब तक नहीं आएगा जब तक कि भक्त परमात्मा के अन्दर अपने आपको अर्पण नहीं कर देता।

ज्ञान पहचान के लिए है, भक्ति रस के लिए है: कर्म बढ़ने के लिए है।

शुभकामना—

भगवान् करें कि हमारी समझ में आजाय कि ऋषि दयानन्द ने क्या लिखा। कहा कि 'यस्य छाया-ऽमृतम्' परमात्मा के आश्रित होना अमृत सुख को प्राप्त करना है और उससे मुख मोड़ना मृत्यु आदि महान् दुःखों का कारण है। जो ईश्वर की भक्ति नहीं करते, वह मृत्यु का अवलम्बन कर रहे हैं। भक्ति के बिना कोई भी मनुष्य ज्ञान और कर्म का रस पान नहीं कर सकता और शक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रभु की भक्ति ही आत्मा की शक्ति और सम्पत्ति है।

प्रभु देव हमें बल तथा बुद्धि प्रदान करें कि हम महर्षि दयानन्द के बताये हुए मार्ग पर चलकर जीवन का सुधार संवार कर सकें और संसार के कल्याण में भाग दे सकें। ओ३म् शम्।

मन्यु का स्वरूप

ओ३म् विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो३ऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह। प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ।
ऋ० १०-८४-५. अ. ४-३१-५.

अर्थ :—

(मन्यो) हे मन्यो ! (तं उत्सं विद्मः) हम उस स्रोत को जानते हैं (यतः आबभूथ) जहां से तुम उत्पन्न होते हो। तुम (विजेषकृत्) विजय करने वाले हो और (इन्द्रः इव अनवब्रवः) इन्द्र "आत्मा" की तरह तुम भी कभी न दबाई जा सकने वाली आवाजवाले हो। (इह अस्माकं अधिपा भव) तुम इस संसार में हमारे अधिष्ठाता पालक होवो। (सहुरे) हे सहुरे ! हे सहनशील ! (ते प्रियं नाम गृणीमसि) हम इस तेरे प्यारे नाम से तेरी स्तुति करते हैं ॥

व्याख्या

इस मन्त्र में मन्यु का स्वरूप बताया है और उस से सम्बोधन करके प्रार्थना की गई है कि हे मन्यो ! आओ, आप ही हमारे अधिष्ठाता तथा पालक बनो। इस प्रकार के मन्यु का वृत्त तनिक विस्तार से ध्यान देने योग्य है।

मन्यु क्रोध से मिलती जुलती चीज़ है परन्तु रूप में थोड़ा सा भेद है। वह भेद जो आरम्भ में नितान्त अल्प होता है, परिणाम में इतना बढ़ जाता है कि दोनों के अन्दर आकाश और पाताल का सा महदन्तर बन जाता है। दोनों मन की दो भिन्न-भिन्न अवस्थाओं

से पैदा होते हुए भी एक देव कहलाता और दूसरा असुर की निकृष्ट उपाधि से याद किया जाता है।

मन्यु का स्वरूप

मन्यु सब में है। वह प्रसुप्त अवस्था में है। यह बीज मात्र है। जहां विशुद्ध आत्मा निर्मल मन के साथ स्पर्श करता है, वहां मन्यु पैदा होता है। यही उसकी उत्पत्ति का स्थान है, अहंकार और विकारी मन जहां स्पर्श करते हैं, वहां क्रोध पैदा होता है। मानो क्रोध में मन की विकृत आत्मा के साथ स्पर्श होता है और मन्यु में मन और आत्मा की निर्मल अवस्था का स्पर्श होता है। दूसरे शब्दों में यों समझिये कि विशुद्ध आत्मा के स्रोत से जो एक इच्छा सी उठती है, जो राग द्वेष से शून्य इच्छा होती है, जो पाप को हटाने के लिए एक शांत गम्भीर, प्रबल प्रेरणा होती है, वह एक अद्‌भुत शक्ति होती है और वही मन्यु का स्वरूप है। उस रूप में मन्यु जो चाहता है उसे कोई रोक नहीं सकता।

मन्यु के भाग

मन्यु के तीन भाग हैं। जैसे फल में गुठली, रस और छिल्का। छिल्के से ही सङ्गतरा, आम आदि की पहचान होती है। छिल्का ऊपर होता है। इसी प्रकार

मन्यु जब पैदा होता है, उसका छिल्का रूपी तेज ऊपर आ जाता है। ऐसे ही क्रोध का हाल है। क्रोध भी मुख पर से प्रगट होता है। मन्यु के मुख पर प्रकट होने की अवस्था अथवा तेज का नाम तामसिक। जैसे अन्धकार में मनुष्य की प्रगति रुक जाती है इसी प्रकार मन्यु की अवस्था में पापी पाप से रुक जाता है। मन्यु पापी को वहीं रोक देता है। क्रोध में भी भीरु डर जाता है। क्रोध निर्बल को परास्त करता हुआ भी, निर्बल पर हाथ उठाता है अथवा अपशब्द कहता है। यह मन्यु और क्रोध में अन्तर है। मन्यु का बाहर का नाम रुद्र मध्य का शिव और आन्तरीय नाम महेश है। छिल्का रुद्र है, रस शिव है और गुठली महेश है। छिल्का तामसिक है, रस सात्विक है और गुठली राजसिक है।

दोनों की उत्पत्ति की अवस्थायें

क्रोध तब पैदा होता है जब अहंकार की प्रतिकूलता होती है और मन्यु में आत्मा की प्रतिकूलता होती है। अर्थात् क्रोध में अहंकार को और मन्यु में आत्मा को आघात पहुँचता है। जब मानव के अहम् और मम पर आक्रमण होता है अथवा हानि पहुंचने लगती है तो क्रोध पैदा होता है। जिन-जिन पदार्थों में मनुष्य का मोह अथवा राग है, उसे क्षति पहुंचने पर क्रोध

जागृत होता है प्रतिकार के लिए, इसलिये क्रोध नीच है असुर है।

मन्यु अहंकार रहित है। राग द्वेष से रहित निःस्वार्थ है। जब परमेश्वर की प्यारी सृष्टि में किसी के साथ अन्याय होता है तो भक्त के हृदय में मन्यु जागता है।

यजुर्वेद अध्याय १६, मन्त्र १ में "नमस्ते रुद्र मन्यवे" से मन्यु का बाहर रूप रुद्र वर्णन किया गया है, मन्यु भगवान् का बाहु है, आत्मा की बाहु है। है सब में, जैसे विद्युत सब में है। बल्ब अग्निप्रूफ़ (Fire proof) होता है और शीशे तो अग्नि के ताप से टूट जाते हैं ऐसे ही विकारी मन में क्रोधाग्नि आजाने से वह जल जाता है। परन्तु बल्ब में चाहे लाख कैंडल की अग्नि का ताप हो, वह नहीं जलता क्योंकि उसमें से वायु निकालकर उसे वायुशून्य किया जाता है, ऐसे ही विशुद्ध निर्मल मन, जिससे ममत्व की वायु निकालकर नितांत ममतारहित कर लिया जाता है, क्रोध की अग्नि से नहीं जलता। उस बल्ब के अन्दर प्लाटीनम को प्रकाशित करने के लिए दो तारों का मेल आवश्यकहै और प्रकाश तो उस मध्य से पैदा होता है जहां दोनों प्रकाश के विद्युत अर्थात् प्राण और रयि स्पर्श करती है।

मन्यु की उत्पत्ति राजसिक है। परमात्मा भी राजसिक है। परमात्मा सृष्टि करता और पालन करता है। रजोगुण न हो तो न दान हो न पालना हो।

क्रोध और मन्यु में अन्तर

चित्रपट में

क्रोध में	मन्यु में
१. बुद्धि मारी जाती है।	१. जोश होश स्थिर है।
२. सहनशक्ति नहीं है।	२. सहुरि है अर्थात् इसमें सहन शक्ति है।

जहां सहन है वहां क्रोध नहीं। जहां क्रोध है वहां सहन नहीं। जैसे परमात्मा ने हमारे भीतर अग्नि और जल दोनों को इकट्ठा रख दिया है ऐसे ही सहन और मन्यु इकट्ठे हैं।

३. वर्ण बाहर से लाल, भीतर से काला है।	३. वर्ण बाहिर से लाल, भीतर से सफेद है। जैसे शरीर में थूक सफेद दाँत सफेद और जिह्वा सफेद है। सफेदी वह है जिसमें विकार न हो यह सफेदी सात्विकता को प्रकट करती है।

मन्यु की प्राप्ति के साधन

मन्यु प्राप्त करने के लिए चार चीजों का होना आवश्यक है।

१. मन्यु की सफेदी अर्थात् विशुद्ध तेज परमात्मा के स्पर्श से आयेगा जैसे कहा है "अग्निनाग्निसमिन्धते"— अग्नि से अग्नि प्रकाशित होती है। अतः जो आत्मा परमात्मा के साथ मेल करेगी उसके अन्दर सात्विक तेज आयेगा, इसका नाम है भक्ति। अतः मन्यु की उत्पत्ति का सर्व प्रथम सहायक साधन भक्ति है। भक्ति तेज तो पैदा करेगी परन्तु वह मन्यु नहीं कहलायेगा। इसके लिये २. दूसरी मञ्जिल है ज्ञान। अज्ञानी को भी भक्ति से तेज तो मिलेगा परन्तु उसमें वीर्य नहीं आयेगा। जैसे कहा है—"आत्मनो वीर्यं बलम्"— आत्मा का वीर्य बल है। यहाँ वीर्य का भाव ज्ञान है। ज्ञान नहीं तो कुछ नहीं। अतः ज्ञान दूसरा आवश्यक सहायक साधन है। ३. तीसरी आवश्यक वस्तु है कर्म। ज्ञान सहित भक्ति रस पैदा करेगी और कर्म सहित बढ़ेगी और बढ़ायेगी। कर्म से बल बढ़ता है। बल वह है जो बुराई का नाश करने वाला है। बल में दो अक्षर "ब" और "ल" हैं। "ब" से "बदी" दुष्टता और "ल" से लय करने वाला अभिप्रेत है, अर्थात् जिस बल

से बुराई का नाश नहीं होता,वह बल बल नहीं है। इस-लिए मन्यु प्राप्ति के लिए तीसरा आवश्यक सहायक-साधन कर्म है। ये तीनों इकट्ठे होकर भी मन्यु पैदा नहीं कर सकते, अकेले तो क्या करेंगे? इन तीनों के साथ एक चौथी आवश्यक चीज है।

४. संयम। संयम जब होगा तो फिर मन्यु पैदा होगा। अर्थात् मन्यु पैदा करने के लिए भक्ति, ज्ञान और कर्म तथा संयम चारों का समन्वय होना चाहिए। जब भक्ति, ज्ञान और कर्म इन तीनों के साथ संयम शामिल हो जाए तो ओज बन जाता है और वही ओज मन्यु को पैदा करता है।

ओज क्या है—ओज वह है जो दूसरों की जिह्वा पर ताला लगादे अर्थात् उसे अवाक् करदे।

इस चतुर्थ गुण के कारण मन्यु बाहर के अत्या-चार को भस्म कर देता है, परन्तु अन्दर सहनशक्ति है। मोटे शब्दों में जोश होश के समन्वय का नाम मन्यु है।

'ओजोऽसि ओजो मयि देहि ... वेद में इनके अन्य नाम तेज, बल तथा ओज बतलाये।

जब तक मन्यु पैदा नहीं होता, मनुष्य मुक्त नहीं होता है। भक्ति से भी मनुष्य विख्यात हो जाता है, ज्ञान और कर्म से भी, परन्तु यह ख्याति सीमित होतीहै

परन्तु जब उसके साथ संयम शामिल हो जाता है तो वह अपरिमित हो जाती है। भक्त और ज्ञानी अपने आन्तरिक शत्रुओं काम, क्रोध आदि पर इस मन्यु से ही जो चार अवस्थाओं के पश्चात् उत्पन्न होता है, विजय प्राप्त करता है।

प्रभुदेव करें कि हमारे अन्दर भक्ति, ज्ञान, कर्म का संयम से मेल होता हुआ मन्यु का उद्भव हो और फिर जन्म मरण के चक्र से छूटकर परमानन्द को प्राप्त करें। ओ३म् शम्।

नाम दान

महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥
(साम, पू० प्र० ३:२:८.५म०९)

यह पवित्र मन्त्र सामवेद का है। सामवेद भक्ति रस से भरपूर है। इस मन्त्र पर कुछ विचार से पूर्व शब्दार्थ नीचे देना उचित प्रतीत होता है।

शब्दार्थः हे (अद्रिवः) हे अन्धकार का हरण करनहारे ज्ञानवान्! हे (वज्रिवः) वज्रको धारण करने हारे त्यागी आत्मन्! (महे चन शुल्काय) बड़े भारी

मूल्य के बदले भी (न परादीय से) तुझको नहीं दिया जा सकता। (शतामघ)हे सैंकड़ों ज्ञानकर्मों से सम्पन्न ! (न शताय) न सौ के बदले (न सहस्त्राय) न हजार के बदले (नायुताय) न लाख के बदले तुझे दिया जा सकता है।

भावार्थ को कविता में दर्शाया गया है।

न बेचूं प्रभु का नाम।

तिमिर विनाशक ज्ञानवान् वह। ज्योति का है धाम ॥
सौ के बदले, हजार के बदले। लाख मिले चाहे दाम ॥
न बेचूं

अमूल्य रत्न है सबसे प्यारे। ऊंचा उसका धाम ॥
प्रजापति है विश्वम्भर का। कौन चुकावे दाम ॥
न बेचूं

सम्पद जितनी जग में प्यारे। उसका ही है काम ॥
खेल खिलाकर सब रचना को। तब लेता विश्राम ॥
न बेंचूं

इस मन्त्र के अन्दर भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि भगवान् मुझे तेरे नाम की समझ आजाए और मैं तुझे किसी प्रकार किसी मूल्य पर किसी भी काम के लिए न बेचूं तेरा त्याग न करूं। न हजार के

बदले न लाख और करोड़ के बदले, न अरब और खरब के बदले और न राज्य और जागीर के बदले तुझे छोड़ूं।

हमारी आयु बढ़ती जा रही है परन्तु ज्ञान प्रति-दिन कम होता जा रहा है। ऐसी कोई वस्तु है जो हम को ज्ञान नहीं करवे देती। सबसे बड़ा ज्ञानदाता गुरु हमारा परमेश्वर है। जिस प्रकार सूर्य हमारी आँख को मार्ग दिखाता और संसार के सभी पदार्थ को प्रका-शित कर देता है, बाह्य तिमिर को मिटा उजाला कर देता है। इसी प्रकार परमात्मा हमारे सर्वप्रकार के अन्धकार का नाश करके सच्चा वास्तविक ज्ञान का प्रकाश करता है। कितनी बढ़िया से बढ़िया टार्च क्यों न हो, फानूस और बिजली के लैम्प क्यों न हों, उनका प्रकाश उतना नहीं हो सकता जितना कि सूर्य देता है। इसी प्रकार संसार के समस्त विद्वान् मिल मिल कर के भी इतना ज्ञान नहीं दे सकते जितना परमेश्वर देता है। परमेश्वर हमारे अन्दर बैठा हुआ है हम उसको नहीं सुनते क्योंकि हमने परमात्मा को बेच दिया है और हमें उसका ध्यान ही नहीं।

दृष्टान्त—मैं बीकानेर में बैठा हुआ था और एक सिन्धी श्रद्धालु भक्त भी मेरे पास था। मैंने आनन्द से

पूछा आपका भगवान् के साथ कितना प्यार है। क्या आपको टट्टी से ज्यादा प्यार है ? हंस पड़ा। मैंने कहा एक तरफ आपका ग्राहक आया हो और उसी समय टट्टी का वेग हो जाए तो पहले किसकी सुध लोगे ? निश्चय टट्टी जाना पहले पसन्द करोगे ग्राहक की खबर बाद में लोगे और अगर आपका ग्राहक भी आया हो और सन्ध्या का समय हो तो पहिले परमेश्वर का ध्यान करोगे आ ग्राहक का ? सिन्धी भक्त ने कहा सच तो यही है कि पहले ग्राहक का ध्यान करेंगे। इसलिये तो भक्त ने कहा है कि भगवान्, तुझे बेचूं न, छोड़ूं न किसी भी कीमत पर। परन्तु हम तो कौड़ियों के बदले इसे बेंच देते हैं।

महाराजा रणजीत सिंह का समय था, एक दिन महाराजा रणजीतसिंह प्रातःकाल वायु सेवन को बाहिर जा रहे थे। उन्होंने देखा एक कुम्हार गधे पर चढ़ा हुआ ढोला गाता जा रहा है। महाराजा को वह लय बड़ी पसन्द आयी। नाम पूछा। उसने कहा कि मेरा नाम बुद्धू कुम्हार है। महाराज चला गया। दरबार में जाकर बुद्धू कुम्हार को बुलवाया और कहा कि बुद्धू वही ढोला सुनाओ। उसने कहा मैं नहीं सुना सकता तो महाराज ने कहा तुम्हें एक ग्राम पुरस्कार में देंगे परन्तु

बुद्धू नें इसे स्वीकार न किया। महाराजा ने यह समझ कर कि शायद एक ग्राम थोड़ा हो उसे और अधिक प्रलोभन दिया कि दो ग्राम ले लो पर ढोला तो सुना दो। परन्तु बुद्धू ने अनन्तः यह उत्तर दिया कि मैं ढोला बेचकर अपना और आनें वाली सन्तान का नाम मैला नहीं करना चाहता कि बुद्धू नें अमुक ग्राम ढोला बेचकर लिया। वाह रे बुद्धू ! तेरी अवस्था तो सचमुच वर्तमान काल के असंख्य लोगों से अच्छी थी। आज तो हम कौड़ियों के बदले परमात्मा के नाम को बेच रहे हैं।

इस स्थान पर किसी ने प्रश्न किया कि वह कौन सी चीज है जिसके द्वारा हम परमेश्वर को पा सकते हैं ? वह कौन सा गुण है जिसके धारण करने पर वह हमारे सामने आ जाए ? किसी ने उत्तर दिया कि झूठ का त्याग ऐसी चीज है। परन्तु वास्तव में झूठ का न बोलना वीरता नहीं है। वीरता है सत्य बोलने की जो पशु नहीं बोल सकता। यदि हम झूठ बोल दें और सत्य न बोलें तो हम पशु से भी कम होगए क्योंकि पशु झूठ नहीं बोलता है और सत्य बोल नहीं सकता।

परमेश्वर के त्याग और बेंचने का क्या कारण है ?

परमेश्वर का त्याग हम तब कर सकते हैं जब भय आता है और बेचते तब हैं जब लोभ आजाता है। तो सबसे बड़ी चीज भय और दूसरी लोभ है। जिस व्यक्ति के अन्दर किंचित् मात्र भी भय है...सर्प बिच्छू आदि से भय की बात नहीं...इस बात का भय है कि मेरा मान घट जाए, वह आदमी सत्य को धारण नहीं कर सकता और इसलिए वह ईश्वर को धारण नहीं कर सकता। हमने पांच बार आहुति दी 'अनृतात् सत्यमुपैमि'...यदि आहुति देने से हमारा सत्य भागता और अनृत को अपनाते हैं तो हम परमेश्वर से धोखा करते हैं, लोगों से भी, और अपने आपको भी धोका देते हैं। जब किसी स्त्री को गर्भ हो जाता है तो वह उसकी रक्षा करती है, इसी प्रकार जब मनुष्य गर्भ के समान परमेश्वर की दात की रक्षा करता है तो वह सचमुच गर्भ के समान ही बढ़ेगा, जैसे गर्भ पूर्ण होकर निकलता है, प्रभु की दात भी पूर्ण होकर बाहर आयेगा। अतः अब हमें जरा ऊंचा होना चाहिये।

माता का दूध हमने छोड़ दिया जब दांत निकले, माता नें छुड़ा दिया, कहा कि दूध खारा हो गया है। माता ने अंगुली पकड़कर हमें खड़ा कर दिया कि अब बैठे न रहो, खड़े हो जाओ। इसी प्रकार यदि अपनी

जीवन यात्रा में अपने आपको बदलते नहीं तो समझो कि हमारा विनाश हुआ, पतन हुआ, हमारा अभी उत्थान नहीं हुआ, अभी हमें परमेश्वर के नाम की समझ न आई। इसी प्रकार वे लोग जिनको परमेश्वर की दात बरसी कि वेद पढ़ो, यज्ञ करो, होम करो, जप करो, और वह वहीं के वहीं रह गए तो उनका वही हाल रहा, कोल्हू के वृषभ की तरह आगे बढ़े ही नहीं।

ब्रह्मचारी लेता ही लेता है भोग के लिये नहीं वह ज्ञान के विकास के लिए लेता है, आपके द्वार से पैसा, दूध वस्त्र आदि मांगता है ज्ञान के विकास के लिये। २५ वर्ष पश्चात् गृहस्थी बना अब देता और लेता है उसके दो काम हैं। अब वह भोग के लिए देता है और लेता है। वानप्रस्थी बना, अब भी ले और दे तो क्या बना? अब वह देता ही देता है। वानप्रस्थी अपने कर्म के विकास के लिए देता है। वानप्रस्थी ने धन, सम्पत्ति, महल माड़ी, पुत्र परिवार को छोड़ा, यदि फिर भी वह धन के आश्रित रहता है तो उसका क्या बना। उसका काम तो देना ही देना है। संन्यास को पाकर यदि वह कर्म के लिए देता रहे तो वह बिगड़ गया। संन्यासी ने अब सब कुछ खो दिया, अहं और मम को खो दिया, वह पूर्ण हो गया। यदि हम एक ही

स्थान पर रहे तो हमारा कुछ उद्धार न हुआ। वान-प्रस्थ में सत्य हमारा स्वरूप बन गया, अब हम सत्यकी उपासना करते हैं। इसी प्रकार भक्त कहता है कि पर-मेश्वर का हमसे त्याग न हो, बेचा न जाए, बेचा गया लोभ के कारण। वेद ने कहा—

यदि वीरो अनुष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः।
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम्॥
साम० पू० प्र० १:२:, द० ४, मं० । २ ।

शब्दार्थ–(यदि) जब (वीरः) पुरुष ब्रह्मचर्य आदि द्वारा वीर्यवान् एवं पुत्रवान् (अनुष्यात्) हो जाये तब (अग्निम्) उस ईश्वरीय अग्नि को (मर्त्यः) मरणधर्मा पुरुष (इन्धीत) प्रदीप्त करे, अपने अन्तरात्मा में जगावे और (आनुषक्) निरन्तर (हव्यम्) प्राणापान रूप आहुतियों को (आजुह्वत्) उसमें ही समर्पण करता हुआ (दैव्यम्) दिव्य प्रकार की (शर्म) सुख और शान्ति का (भक्षीत) भोग करता है।

इस मन्त्र में मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य है और उसके साधन बताये गए। अन्तिम उद्देश्य है दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति। ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों की मर्यादाओं का पालन करता हुआ मनुष्य क्रमशः योग द्वारा आनन्द के सर्वोच्च भण्डार

परमात्मा को प्राप्त कर सकता है और क्लेशों से छूट सकता है। थोड़े से शब्दों में ही सारे भाव को भर दिया है परन्तु वास्तव में देखें तो उस लक्ष्य पर पहुँचना इतना सरल नहीं जितना दर्शाया गया है। मनुष्य घिरा हुआ है शत्रुओं से, सर्दी में सर्दी, गर्मी में गर्मी हमारी दुश्मन हैं। मच्छर, मक्खी, ततीए, बिच्छू और सांप आदि सब हमारे दुश्मन हैं परन्तु इनका तो हम मुकाबला भी कर सकते हैं और बच भी सकते हैं। मच्छर आदि से बचने केलिए मच्छरदानी को ओढ़ लेंगे अथवा अपने आपको किसी प्रकार से बचा लेंगे परन्तु आन्तरिक शत्रुओं से बचना मुकाबिला करना बड़ा कठिन है। इस अवस्था में काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि आन्तरिक शत्रुओंसे कैसे बचें यह एक समस्या है। यदि इसका हल न हुआ और यदि हम न बच सके तो यह पुनः हमें आवागमन के चक्र में डाल देगा।

जब हमने शत्रु को शत्रु समझ लिया तो फिर हमें भय हो गया और उसे परास्त करने के लिए हम उपाय ढूंढ़ते हैं। परन्तु जब हमने शत्रु ही न समझा और हमनें उसके साथ मित्रता गांठ ली तो हम भी डाकू बन गये। शत्रु से प्रेम है तो हम डाकू हैं। हमारी तो इस समय मोह, लोभ, काम, क्रोध सबसे मित्रता है।

जिन्होंने अंग्रेजों को देश का शत्रु और घातक समझा, उन्होंने देश को बचाने के लिए सब कुछ निछावर कर दिया, फांसी पर चढ़ गये और वे देश को स्वतन्त्र करा कर अपना नाम अमर कर गये। इसी प्रकार जब हम काम, क्रोध आदि को शत्रु समझ लें तो उनको निकाल कर ही दम लेंगे। घर में सर्प घुस आए तो उसको निकालने का मनुष्य पूरा प्रयत्न करता है। सपेरे से निकलवाता है। तो क्या इन राक्षसों को निकालने के लिए कोई सपेरा नहीं है? नहीं! सपेरा है सामवेद के दसवें मन्त्र में आया है :—

ओ३म् अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे।
देवो ह्यसि नो दृशे ॥१॥ साम० पू. १-१-१०

भगवान् का भक्त कहता है कि भगवन्! मेरा तो आश्रय तू ही है। एक वह पुरुष है जो धनधान्य पुत्र परिवार की प्रार्थना करता है और यह सब कुछ शरीर के लिए है। एक वह है जो शरीर की परवाह नहीं करता वह ऊंचा चढ़ता है और कहता है कि भगवन् हमारा जीवन आदर और सत्कार का जीवन हो। रोटी मिले तो आदर की मिले। परन्तु ये लोग मध्यम श्रेणी के हैं। पहली श्रेणी के लोग प्राण और दूसरी के उदर को प्रसन्न करना चाहते हैं। आत्मा के

लिए कुछ नहीं मांगते । भगवान् का एक भक्त इन श्रेणियों से भी ऊपर है । इसकी संज्ञा उत्तम पुरुषों में से है । जो प्रभु से कहता है कि हमें अपना नाम दान दे । नामदान कब मिलता है ? नामदान तो मिला हुआ है । गायत्री में कितने नाम भगवान् के आये हुए हैं परन्तु क्या जपने से नामदान हो जाता है । नहीं यह नाम दान में तो नहीं मिला । यदि दान में मिल जाता तो हमारा हो जाता । नाम दान नहीं मिलता तो नाम तो मेरा होगया, भूखे को खिला दिया उसकी भूख मिट गई, प्यासे को पिला दिया उसकी प्यास मिट गई । दान तो बन्धनों को काटने वाला है । अगर हमारे बन्धन कट गये तो दान मिल चुका । हम तो नाम को चुरा लेते हैं यह दान नहीं । विद्या पढ़कर आये तो वह क्या दान लेकर नहीं आये पैसा देकर प्राप्त किया । इसलिये उनका भी छुटकारा नहीं होगा । दान मिलता तो शांति आजाती । इसलिये कहा भगवान् हमें वह सद्गुरु मिलाओ जो सत्य को जान चुके हैं उनके द्वारा अपना मार्ग मालूम हो जायगा ।

राधास्वामी मत के अन्दर जायें तो सबसे पहले प्रश्न वे यह करते हैं कि आप कैसे आए । जब उत्तर मिलता है दर्शन करने । तो पूछते हैं कि क्या नाम दान

लिया हुआ है। यदि नहीं लिया तो उसको मिलने नहीं देते। मनु महाराज ने कहा—

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ॥

वेद का दान सबसे उत्तम दान है। मैं दान नहीं ले रहा, आप ले नहीं रहे। जो स्वयं भूखा है दूसरे को क्या देगा। मैं वेद जानता नहीं हूं मुझे तो दान नहीं मिला हुआ है मैं पोथी का लिखा सुना रहा हूं, न दानी हूँ न आप लेनेवाले हैं। यदि सचमुच में वैसा होता जैसे ऋषि दयानन्द जो प्रकाण्ड पण्डित था जिसकी किरण घर-घर पहुँची और पहुंच रही है तो क्या अच्छा होता। हम तो नकल कर रहे हैं। शायद कभी असल बन जायें। किसी के सिर पर गठड़ी थी कपड़े में सुराख था। कनक के दाने गिर पड़े। भूमि तैयार थी वह उग आई। इस प्रकार हो सकता है किसी की भूमि तैयार हो रही हो और यह बीज उसमें पड़ जाय। जैसे छज्जू भक्त को जब वह गली में जा रहा था सामने से भङ्गिन आ रही थी। तो भङ्गिन को देखकर कभी वह गली के एक सिरे पर होता कभी दूसरी ओर। उसे इस दुविधा में देखकर भङ्गिन ने कहा भक्त जी एक ओर हो जाओ। भूमि तैयार थी इस समय तक छज्जू कभी माया से प्यार करता कभी राम से। इन शब्दों

ने आंखें खोलदीं। दुविधा में दोनों गए माया मिली न राम। छज्जू को समझ आगई और चौबारे में बैठकर ही भगवान् की ओर मग्न होगया। तभी से कहा है 'जो सुख छज्जू के चौबारे न बलख न बुखारे।'

शंकर को चूड़ा (भङ्गी) मिला। शंकर ने कहा कि हट जाओ। चूड़े ने पूछा आप कौन हैं? शंकर ने कहा मैं ब्रह्म का प्रचारक हूं। तो चूड़े ने पूछा क्या जिस टोकरी को मैंने उठाया हुआ है उसमें ब्रह्म है, टट्टी में है, झाड़ू में है? शंकर ने उत्तर दिया हां। तो चूड़े ने कहा तुम ब्रह्म का प्रचार नहीं कर सकते जाओ। भूमि तैयार थी, शंकर के नेत्र खुल गये कि अरे शंकर जब सर्वत्र ब्रह्म को देखता है और 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का प्रचार करता है तो चूड़े को कैसे कह सकता है कि हट जाओ। ब्रह्म के प्रचारक में भेदभाव कैसे?

इसलिये भक्त कहता है न अन्न चाहिये न मान, मुझे तो नाम चाहिए। मुझे सद्गुरु प्राप्त कराओ। भगवान् तो अन्दर बैठे हैं जब पर्दा उठाया दर्शन हो गए। भक्त ने कहा ऐसी बुद्धि प्रदान करो कि तेरे नाम को किसी हाल, किसी काल में न बेचें।

साम क्या है?

साम बराबर है स+अ+म। मानो स और म

के दरम्यान अ है। "म" प्रकृति, माया, प्रलोभनों में फंसाने वाली है और स जीव है। "अ" परमेश्वर है। अब माया ईश्वर को उलांघकर कैसे जीवात्मा को प्रलोभन दे सकती है। अब भक्त को सर्वत्र भगवान् नजर आता है जब भक्ति के द्वारा भगवान् को मध्य में ले आता है तो माया का सांप उसे डस नहीं सकता। इसलिए सामवेद के इस मन्त्र द्वारा भक्त कहता है कि प्रभु देव! आओ मेरे और माया के दरम्यान आओ, ताकि मैं माया के प्रलोभनों से बचकर तेरे दामन को कभी न छोड़ूँ, तेरे नाम को कभी न बेचूँ। भगवान् करें कि हमें ऐसी बुद्धि, बल और योग्यता प्रदान हो कि जिससे हम भगवान् के नाम की महिमा को जान सकें।

वेदोपदेश

(प्रभु कृपा के बिना दुःखों का अन्त नहीं हो सकता)

ओ३म् अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्।
यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात्॥ यजु० ३-५८॥

इस मन्त्र में बताया गया है कि मनुष्य को सावधान रहना चाहिए। वह कभी यह न समझे कि मैं जो चाहूँ, वही कुछ हर हाल और हर काल में अवश्य ही

कर लूंगा। इस मन्त्र पर विस्तार से कुछ कहने से पूर्व इसका पदार्थ दे देना उचित प्रतीत होता है।

पदार्थ इस प्रकार है—

पदार्थ :—हम लोग (त्र्यम्बकम्) तीनों कालों में एक रस ज्ञानयुक्त (देवम्) दाता (रुद्रम्) दुष्टों को रुलानेवाले जगदीश्वर की उपासना करके सब दुःखों को (अव अदीमहि) अच्छे प्रकार नष्ट करें (यथा) जैसे परमेश्वर (नः) हम लोगों को (वस्यसः) उत्तम-उत्तम वास करनेवाले (अवाकरत्) अच्छे प्रकार करे, (यथा) जैसे (नः) हम लोगों को (श्रेयसः) अत्यन्त श्रेष्ठ (करत्) करे (यथा) जैसे (नः) हम लोगों को (व्यवसाययात्) निश्चय करनेवाले करे वैसे सुखपूर्वक निवास कराने वा उत्तम गुणयुक्त तथा सत्यपन से निश्चय देने वाले परमेश्वर ही की प्रार्थना करें।

अनेकों बार देखा जाता है कि कई डाक्टर वैद्य लोग शर्तिया चिकित्सा के विज्ञापन देते हैं और बड़े गर्व के साथ कहते हैं कि हमारी अमुक ओषधि अमुक प्रकार के भयंकर से भयंकर और पुराने से पुराने रोग का अचूक बाण है। रोग उसके सन्मुख ऐसा दौड़ता है जैसे गधे के सिर पर से सींग। ऐसी अभिमानयुक्त बात करते हुए वह परमात्मा को सर्वथा भूल जाते हैं।

किसान का पुरुषार्थं तभी सफल होता है जब परमेश्वर की कृपा की दृष्टि होती है। किसान कभी यह दावा नहीं करता कि मेरा यह बीज डाला हुआ अवश्य ही फल लायगा, वह बीज डालते ही प्रभु की ओर दृष्टि रखता है और उसी के आश्रित होकर ही रहता है। इसी प्रकार मनुष्य जैसे कार्य धनबल और बुद्धिबल से करते हैं वह तब तक सफल नहीं होते जब तक परमेश्वर की कृपा न हो। पर वाह रे मनुष्य ! प्राय: यही देखते हैं कि जब तुम्हें सफलता प्राप्त हो जाती है, तो तू अपने ही बुद्धिबल तथा धनबल पर ही इतराता है और उसी का ही जिक्र करता है, परमेश्वर की कृपा को तो तू भूल ही जाता है। नाम ही नहीं लेता। जिसके बिना हमारा कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता उसका भुला देना कितनी आश्चर्य की बात है। तभी तो वेद भगवान् ने मानव की इस त्रुटि को सामने रखते हुए चेतावनी रूप में बता दिया कि याद रख ! कोई भी कार्य बिना प्रभु की कृपा के सफल नहीं हो सकता। देखो सूर्य हमें प्रकाश देता है हमारी आंख देखती हैं कि जिसके द्वारा यह शरीर देवताओं की दी हुई सम्पत्ति से लाभ उठाता है। परमेश्वर ने एक चीज दी जिसका नाम प्राण है।

प्राण का महत्त्व

हमारे देवताओं का आशीर्वाद व्यर्थ हो जाय यदि प्राण साथ न दें। नेत्र तब देखते हैं जब प्राण उसके भीतर कार्य करता है। इसी प्रकार नासिका, कान, जिह्वा आदि किसी वस्तु को ग्रहण नहीं करते जब तक प्राण साथ न दें। मल मूत्र विसर्जन भी बिना प्राण की पति के नहीं हो सकता। प्राण ! इतना सहायक है !! यह परमेश्वर की विलक्षण देन है। यदि श्वास इच्छा पूर्वक लेना पड़ता तो हम कोई भी कार्य कर न सकते। क्यों ?

कारण कि जीवन रक्षा के लिए तो प्रतिक्षण हमें प्राण लेने की क्रिया करनी पड़ती है। वर्तमान स्थिति में तो हम संसार के सब व्यवहार करते हैं। प्राण अनायास आ जा रहा है। हाथ से कार्य करने के लिए हाथ को हिलाना पड़ता है। नेत्र से देखने के लिए नेत्रोन्मीलन करना ही पड़ता है। परन्तु प्राण तो बिना हमारे कुछ निवेदन किये बिना किसी पुरुषार्थ तथा परिश्रम के कार्य कर ही रहा है। यह सर्वत्र फैला हुआ है। यह हमारे सब कार्य कर रहा है। हम इसका कुछ भी नहीं कर रहे। यह सहायक आदि में है अन्त में है। पुरुष प्राण का मूल्य नहीं दे सकता। हम तो यह

भी नहीं जानते कि वायु में प्राण कौनसा है और कहां है, परन्तु यह नितांत सत्य है कि वायु के अन्दर प्राण विचर रहा है ।

अद्भुत नासिका शक्ति

परमेश्वर ने नासिका के अन्दर अद्भुत कला रक्खी है कि वह अपने आप (Automatically) कार्य करती और प्राण लेती रहती है जो मेरे जीवन की रक्षा करनें वाला है ।

आश्चर्य

इसका मूल्य होता, बाजार से क्रय करना पड़ता तो हम कहां से अदा करते । बिड़ला सेठ का भी दिवाला निकल जाता । पर आश्चर्य ! आश्चर्य !! हम उस प्राणदाता को भूल गये ।

याद कैसे हो ?

उस दाता की याद कैसे आए ? जब तक मंजिल का, ध्येय का ही ज्ञान नहीं वह अपनी प्रगति की मर्यादा कैसे बांधे ? यदि मुझे मालूम हो कि मेरे पास एक घण्टे का समय है और मैंने एक कोस चलना है तो मैं अपनी प्रगति की मर्यादा निश्चित कर लूंगा ।

यदि यह ज्ञान हो कि मुझे दिन भर का अवकाश है तो ठमक-ठमक कर चलूंगा। हमें तो ज्ञान नहीं कि परमेश्वर का ध्यान कितनी दूर है। जिसको अधिक यात्रा करनी होती है वह समझता है कि मैं पैदल नहीं पहुंच सकता, साईकिल पर चढ़ता है, यदि साईकिल से भी काम न हो सके तो मोटर पर चढ़ता है। परन्तु परमेश्वर की मंजिल का किसी ने ध्यान नहीं किया अन्य, धन कमाना हो तो सर्वप्रकार के साधन प्रयुक्त करेंगे, अपना सारा ज्ञान बल बुद्धिबल उसके उपार्जन तथा वृद्धि में ही लगा देंगे। बस उस अवस्था में हमें यही विचार रहता है कि हमारी यह कामना कैसे पूर्ण हो। बालक को पौण्ड और पैसा देदो उसके लिए दोनों समान हैं। हमारे लिए पौण्ड जो परमेश्वर का ज्ञान है ऐसा ही है जैसे बालक के लिए पौण्ड और पैसा है, इस यात्रा को (जीवन यात्रा को) सुखी बनानें के लिए आवागमन के चक्र से छूटने के लिए चिन्ता नहीं।

वेद ने कहा—

तीनों काल के अन्दर एक रस रहनेवाला भगवान् का जो एक ज्ञान है, उस ओ३म् ज्ञान को हम नहीं जानते। उस भगवान् को हम आपत्ति में पुकारते हैं। वह पैदा करनेवाला है। भगवान् का नाम रुद्र है।

जिस समय चारों ओर अन्धकार होता है तो मुक्तकण्ठ से अनायास परमेश्वर का नाम निकलता है। उस भगवान् की पुकार पहले क्यों न की ?

गुरु नानक ने कहा है—

दुःख में सिमरे सब कोई, सुख में सिमरे न कोय।
जो सुख में सिमरे नानका, दुःख काहे को होय॥

उसे मित्र क्यों न बनाया—

कारण

हमारे अन्दर न्यूनता है कि निश्चयात्मिकता बुद्धि नहीं है। जब तक ज्ञान न हो जाय कि परमेश्वर ही हमारी सर्व आवश्यकताओं को पूरी करता है, हम उसकी शरण में कैसे जानें लगें और कैसे उसे अपनाने लगें ? भगवान् हम से दूर-दूर ही प्रतीत होता है, यद्यपि वह सर्वव्यापक है। क्या वह रूठ रहा है ? विचार करने से पता लगेगा कि वास्तव में हमारे कार्य ऐसे हैं कि जिनकी कृपा से हम उससे पृथक् हो रहे हैं। कल्पना करो एक बड़ा सुन्दर चित्र आपका रक्खा है, किसी बालक ने पेन्सिल उठाकर उस पर लकीरें लगा कर उसके सौन्दर्य को विकृत कर दिया तो आप तुरन्त उसे थप्पड़ लगा देंगे तो क्या परमेश्वर की परम विचित्र सुन्दरता को हम यदि बिगाड़ दें तो क्या वह रूष्ट न

होगा ? होगा, अवश्य होगा। उसने सुन्दर हस्त दिया, नयन दिये। हमने नयन को विकृत कर दिया तो उसने अगले जन्म में हमें चक्षुदोष सम्पन्न बना दिया। ऐसे नहीं कि जिसको चाहे रूपवान् बनादे और जिसको चाहे कुरूप बनादे। उसका प्रत्येक कार्य न्याय पर निर्भर है। कुरूप अथवा दोषयुक्त होना भगवान् की सुन्दरता के विकृत करने का परिणाम है। हम भगवान् की बनाई चीजों की रक्षा तथा सत्कार करते, अन्त में वह सुन्दर भगवान् हमें अपना ही रूप दे देता।

माता-पिता रूपवान् हों, तो वह अपनी सन्तान को रूपवान् बनाने का प्रयत्न करते हैं।

मनुष्य जब परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करता हुआ उसके सौन्दर्य की रक्षा करता है। जिस स्वरूप को देखने पर ईश्वर का स्मरण हो जाय वही सुन्दर स्वरूप है। जैसे किसी बालक को देखकर हम पूछते हैं कि तुम किसके बालक हो, जब वह कहता है कि अमुक के, तो हम कहते हैं हाँ भाई! तुम्हारा स्वरूप उससे मिलता जुलता है।

संशयनिवृत्त

सन्तों के पास जाते ही संशय मिट जाते हैं। लोग उन्हें कहते हैं, 'भगवान्'। अब उसके स्वरूप को

देखकर संशय निवृत्त हो गए और उसको भगवान् मान कर ही उससे दुःख निवृत्त करते हैं। परमेश्वर का भक्त तब तक नहीं बनता जब तक यह न समझे कि सर्व आवश्यकताओं को वही पूर्ण करता है। भगवान् के होने न होने पर हमें हर्ष शोक नहीं है। हमें हर्ष है संसार की उन वस्तुओं में जिनका हमें ज्ञान है।

आर्य कम बने

हमारे नियम कितने उच्च हों परन्तु जब आचरण नहीं, वह किस काम के। आर्यसमाजी होने के नाते हमने बहुत लोगों को आर्यसमाजी बनाया और रजिस्टर में उनका नाम अंकित भी हो गया। परन्तु जिसका नाम अंकित न हुआ और आचरण आर्यों का सा है। संस्कार करता है, हवन करता है तो हमने समझा कि वह भी आर्यसमाजी है। समाजी बहुत बन गए परन्तु आर्य कम बनें। तो इस अवस्था में समाज किसकी होगी, लूलों की अर्थात् शिथिल अंगों की।

भक्ति जीवन है

भक्ति तो जीवन है। भगवान् का ज्ञान नहीं होता जब तक उसके साथ न रहेगा। बढ़ई को लकड़ी का ज्ञान न होगा जब तक दिन भर लकड़ी के साथ न

रहे। भगवान् का संग हमने एक घण्टा भी न किया, कह देने मात्र से संग नहीं होता।

फिर कैसे देखें

इन्द्रियां संसार का ज्ञान कराती हैं। साकार को आकार वाली देखेंगी, निराकार को आकाररहित ही देखेगा। मन और बुद्धि तो आकार वाले हैं। उनका वही आकार है जैसे जल को जिस पात्र में डाल दो, वैसा बन जाएगा। किसी की मृत्यु पर शोक प्रकट करने जाओ, शोक मुख पर छा जायेगा। भीतर मन नें अपना आकार बनाकर मुख पर छाप लगादी तो मन और बुद्धि का आकार है। परमेश्वर उनसे नहीं जाना जाता आत्मा ही जान सकता है, अकेला नहीं जान सकता, यह अन्यों की सहायता चाहता है कि वह देव-इन्द्रियों का मुख भीतर की ओर हो जाए, बाहर कुछ भी न देखें। अतः परमात्मा को देखने के लिए अन्तःकरण से सकल उत्तम सामग्री से विशेष भक्ति करें।

पूजा क्या है

इन्द्रियों से हटना अर्थात् उन्मुख होना परमेश्वर की पूजा है, विषय में आसक्त होना परमेश्वर से विमुख होना है।

फिर बाधा क्या है

फिर कौन सी बाधा है जो यह निश्चय नहीं होने देती कि भगवान् ही सब कुछ देता है। संसार के विषय अपनी ओर खींचते हैं और उधर जाने नहीं देते । इससे भी बढ़कर जो बाधा है वह मनुष्य का स्वार्थ है । हमारी कोई वस्तु परमेश्वर से पूरी नहीं होती । मैं कुछ करना चाहता हूँ वह इच्छा मेरी पूरी नहीं करता अतः मुझे उससे प्रेम नहीं हो सकता । मेरी पूर्ति स्वार्थ से विषयों से होगी । जिस व्यक्ति के अन्दर स्वार्थ नहीं रहा, उसका दर्पण साफ हो जायेगा । स्वार्थ मिट जाए तो कोई कष्ट नहीं, अतः परमेश्वर प्राप्ति के लिए स्वार्थ को जो विषयों से सम्बन्ध रखता है. हटाना होगा ।

अपने आपको बनाओ

परन्तु स्वार्थ का एक दूसरा ज्वलन्त पहलू भी है । स्व-आत्मा अर्थ-लक्ष्य, ध्येय, तो स्वार्थ से आत्मा का ध्येय अभिप्रेत है । आत्मा का ध्येय सर्वदा सामने रखो । परन्तु हमारी दशा ही और है । हम तो जो काम करते हैं वह अपने लिए नहीं दूसरों के लिए । आर्यसमाज कहता है पण्डित बुलाओ जनता के लिए ।

अपने लिये नहीं। उत्सव होता है, धुरन्धर विद्वान् आकर उपदेश दे जाते हैं, मन्त्री प्रधान प्रबन्ध में ही लगे रहते हैं, उनको उपदेश सुनने का अवकाश ही नहीं मिलता। उन्होंने समय का त्याग तो किया, पर संसार के लिये, अपने लिए नहीं। प्रत्यक्ष देखने में वह बड़ा भारी त्याग है परन्तु जिस प्रकार कूप के लोटे उपकार करते हैं, भर-भर कर आते हैं और निसार में सर्वत्याग करते है। निसार भी त्याग करती है वह जल को आगे पहुंचा देती है। निसार से खाडे में, खाडे से नाली में, नाली से खेत में जल जा पहुँचा। लोटों ने, निसार ने, खाडे ने, नाली ने सबने त्याग किया परन्तु इस त्याग का परिणाम क्या निकला, यही कि लोटा लोटे की फांसी (रस्सी) छेबल (काही) खाडा, नाली सब में दुर्गन्ध पैदा हो गई, दूसरों के लिए त्याग दिया। प्रफुल्लित न हुए, बहुमूल्य जल को धारण ही न किया। जिसने धारण किया वह तो हरा भरा हो गया। खेत ने धारण किया वह हरा भरा हो गया। जनता में से जिसनें भी उपदेश को धारण किया, उन्नत हो गया। प्रधान और मन्त्री में अथवा प्रबन्धकर्त्ताओं में तो अभिमान की अकड़ से दुर्गन्ध पैदा करदी। अतः सर्वप्रथम अपने आपको बनाओ। ऋषि दयानन्द ने अपने को

बनाया, महात्मा गांधी ने अपने को बनाया, मानापमान से वे उपरत हो गये। उन्होंने पहले अपने को बनाया, तप किया फिर काम किया।

ऋषि दयानन्द का तप

कुम्भ के महोत्सव पर ऋषि दयानन्द ने देखा कि मैं विरोध नहीं कर सकता, चण्डी पर्वत पर जाकर तप किया, चार वर्ष पर्यन्त नग्न भ्रमण किया। शीतोष्ण को सहन किया, सिंह, बघियाड़, हस्ती आदि के समूहों में घूमे, डटकर विरोध किया। जब देखा कि पक गया तब प्रचारार्थ निकले।

बिना तप के कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता

कोयले को अग्नि में डालो, तो जब उसके अन्दर अग्नि प्रविष्ट हो जायेगी, अग्नि बन जायेगा। जल में जब अग्नि प्रवेश कर गई तो वह आकाश में चढ़ जायेगा, भगवान की अग्नि में जिसने अपने आपको तपाया, वह सर्वज्ञ भगवान् की तरह फैल गया। महात्मा गांधी की विभूति भी फैल गई। बिना तप मनुष्य सत्य को, नहीं नहीं कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए कहा—

प्रमाण

ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। भगवान्

ने ऋत और सत्य को तप से प्रकट किया, इसलिए उसका सत्य कायम है। गांधी का सत्य इसलिए कायम है कि उसने तप किया। आर्यसमाज ने तप नहीं किया।

तप क्या है

बड़ा तप है हानि लाभ को सहना, इससे बड़ा तप है मान अपमान को उपेक्षावृत्ति। इस तप का सम्बन्ध आत्मा के साथ है। शीतोष्ण का तप शरीर का तप है। हानि लाभ का सहना बुद्धि का, क्षुधा पिपासा का तप प्राण का तप है। जिसने अहंकार का त्याग कर दिया वह परमात्मा को पायेगा। इसलिए महर्षि ने नियम बनाया, संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है। अतः यह शरीर संसार के काम आये। मन में प्रीति हो और अभिमान का त्याग हो, तो जब ऐसी अवस्था आ जाए, समझ लो, पग आगे बढ़ रहा है।

अभिमान का त्याग और मन में प्रीति सच्ची प्रार्थना से प्राप्त हो सकते हैं। प्रार्थना निर्जीव न हो, जिस प्रार्थना को करे उसमें जीवन डाल दे। इस पर विचार करना ही समाधि है। यह बड़ा कर्म है। कहते

और करने में बड़ा अन्तर है, कवि ने कहा है—

कहना करना दो हैं भाई,
करने की है नेक कमाई
कहना कह कर जावे थक
करना पहुंचे मंजिल तक ॥

जब तक मनुष्य इसको न जाने, वह कुछ नहीं कर सकता । थोड़ा करे, समझ से करे तो उसका बेड़ा पार है । भगवान् करे कि हमें शक्ति और बुद्धि प्राप्त हो ताकि हम महर्षि के शब्दों में 'कोई भी मनुष्य ईश्वर की प्रार्थना वा उपासना के बिना सब दुःखों के अन्त को नहीं प्राप्त हो सकता । क्योंकि वही परमेश्वर सब सुख पूर्वक निवास वा उत्तम उत्ताम सत्य निश्चयों को कराताहै इससे जैसी उसकी आज्ञा है उसका पालन वैसा ही सब मनुष्यों को करना चाहिए ।' प्रदर्शित भाव को समझें और जीवन में घटाते हुए सर्वगुण सम्पन्न बन सकें ।

ओ३म् शम्

मनुष्य जीवन के उद्देश्य तथा उसके साधन

ओ३म् इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता

प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ यजु १। १॥

यह यजुर्वेद का पहला मन्त्र है, विस्तार से इस मन्त्र का अर्थ तथा भावार्थ महर्षि के वेदभाष्य में ही अवलोकन कीजिये। यहाँ हमें केवल यह बतलाना है कि इस मन्त्र में मनुष्य जीवन के ध्येय को बतलाया गया है। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति मौखिक रूप से कह देता है कि प्रभु को लीला बड़ी विचित्र है, परन्तु वास्तव में उसकी लीला की विचित्रता भान करनेवाला कोई कोई होता है। जिस समय प्रभु की लीला को देख कर मनुष्य आश्चर्य में आजाता है तब उसमें श्रद्धा आ जाती है। कभी आपने सोचा कि प्रभु ने पक्षियों को क्यों बनाया ? साधारण व्यक्ति तो यही उत्तर देता है, कर्मफल भोगने के लिए। यो यही उत्तर सर्वप्राणियों के लिए ही होता है। पशुओं को बनाया तो कर्मफल भोगने के लिए। मनुष्यों को बनाया तो भी कर्मफल भोगने के लिए। यदि ऐसी बात है तो फिर विशेषता क्या रहती है। आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वाले लोग इसका भान और विचार करते हैं, उनका कहना है कि

भूमि पर जो मल पैदा होजाता है और विष फैल जाता है, उसका विनाश करने के लिए प्रभु ने कृमि, कीट आदि क्षुद्र जन्तु पैदा किए और फिर यह क्षुद्र जन्तु जो कृषि आदि को हानि पहुंचाते हैं, उनको दूर करने के लिए प्रभु ने काक आदि पक्षी बनाये। पक्षियों के लिये खाद्य वस्तु कृमि हैं, उनकी वह सफाई कर देते हैं। पशु मनुष्य के काम आते हैं, मानो प्रत्येक प्राणी दूसरे का कार्य करने के लिए उत्पन्न हुआ है। इसलिए मनुष्य बनाया गया, अपने काम करने के लिए नहीं, अपितु परमेश्वर का काम करने के लिए और तभी मानव जीवन सर्वश्रेष्ठ जीवन है। मनुष्य अपना काम कभी नहीं करता। प्रत्येक प्राणी दूसरे का यज्ञ कर रहा है।

यज्ञ क्या है

सबसे श्रेष्ठतम कर्म यदि कोई है तो वह यज्ञ है। परमेश्वर दया करता है। पशु पक्षी दया नहीं कर सकते। गाय का बछड़ा एक ही खुरली पर माँ के साथ बन्धा हो और गाय के सामने चारा पड़ा हो, बछड़े के सामने न हो तो गाय कभी अपने बछड़े को चारा न देगी, स्वयं खाती रहेगी, बछड़ा बेचारा चाहे भूखा तड़पता ही रहे, उसे दया न आयेगी। बछड़े के सामने जल

भरी बाल्टी पड़ी हो, स्वयं पीवेगा, माता को नहीं देगा चाहे वह प्यास से व्याकुल ही क्यों न हो। इसी प्रकार पशु न न्याय कर सकता है और न कृपा। दया, न्याय और कृपा तो परमेश्वर करता है और परमेश्वर की भांति मनुष्य भी दया, न्याय और कृपा कर सकता है। आरम्भ चीज सत्य है, अन्तिम चीज भी सत्य है। सत्य उसका साधन है, यज्ञ ही सत्य है।

भगवान् तो हमारा सुख है, बल है, अन्न है, ज्ञान है 'इषे त्वोर्जे त्वा''

बल देनेवाली चीजें कौनसी हैं

संसार में बल देनेवाली दो चीजें हैं धन और ज्ञान। धन के त्याग देनें में और ज्ञान के ग्रहण करने में बल है। यह बल किसे मिलेगा ? शरीर की पुष्टि के लिए तो धन चाहिए। ज्ञान से शरीर को कोई लाभ नहीं। तो यह बल मिलेगा आत्मा को। परमेश्वर का काम भी वही कर सकताहै जिसके अन्दर आत्मिक बल हो। तो इससे यह परिणाम निकला कि जब मनुष्य हैं ही परमेश्वर का काम करने के लिए और परमेश्वर का काम वही कर सकता है जिसके अन्दर आत्मिक बल हो तो हमें आत्मिक बल ही पैदा करना चाहिए।

शारीरिक बलवाले परमेश्वर का काम नहीं कर सकते और न ही बुद्धिबल वाले यह काम कर सकते हैं। शारीरिक बलवाले मनुष्य का काम करदे, प्रभु का काम उनसे तब तक नहीं हो सकता जब तक आत्मिक बल साथ न हो।

आत्मिक बल प्राप्त करने के लिए त्याग और ग्रहण की आवश्यकता है। लाला मुन्शीराम ने जब ८०००) का सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय, तीस सहस्र की जालन्धर की कोठी और पुत्रों तक का त्याग कर दिया तो आत्मिक बल प्राप्त होगया और महात्मा मुन्शीराम कहलाने लगे। जनता की दृष्टि में मान्य बन गए। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि त्याग और ग्रहण तब तक नहीं हो सकते जब तक श्रद्धा न हो। 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्' तो श्रद्धा हमारे लिये बड़ा भारी शस्त्र है।

श्रद्धा क्या है

शास्त्रकारों ने कहा श्रद्धा मानव जाति की जीवनयात्रा का बड़ा सहायक है और यह तब तक उसके साथ रहेगी जब तक कि वह अपने विकास की उस अवस्था को प्राप्त न हो जाए, जहां श्रद्धा, ज्ञान और पूर्ण अनुभव में परिणत हो जाती है। जैसे

शरीर में प्राण सहायक हैं ऐसे ही आत्मिक उन्नति के लिए श्रद्धा सहारा है। इसका आदि श्रद्धा है, अन्त ऐसे हो कि जिसके लिए वह श्रद्धा कर रहा है, वह उसमें परिवर्तित हो जाए। अन्न खाते हैं शरीर के लिये। जब तक अन्न भिन्न-भिन्न रूपों में है, अन्न ही है। रवा, चोकर, मैदा, आटा, पूड़ी, कचौड़ी, कुछ बताओ, वह गोधूम ही है परन्तु जब वह उदर में पड़ कर शरीर का भाग बन जाए तो अन्न का काम समाप्त हो गया। तो हमारा अन्तिम ध्येय ज्ञान की प्राप्ति है जिसका इस यज्ञ में संकेत किया गया है। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती। ज्ञान बिना श्रद्धा के प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए योगियों ने कहा कि श्रद्धा हमारी आन्तरिक सत्ता का प्रथम विकास है जो हमारी बाह्य चेतना का स्पर्श करता है, यही अन्तरात्मा की जागृति का प्रत्यक्ष चिन्ह है।

श्रद्धा दो प्रकार की है

श्रद्धा दो प्रकार की है एक विशुद्ध निश्चल, निर्दोष और दूसरी अशुद्ध। विशुद्ध श्रद्धा आत्मा की श्रद्धा है और बड़ा बनने की आकांक्षा के लिए जो श्रद्धा है, वह अशुद्ध और क्षुद्र है। अभिमान, दम्भ, प्राण की स्वैरिता, अहंता, क्षुद्र वासना की तृप्ति यह

सब अशुद्ध श्रद्धा है। तो सब साधनाओं के लिए श्रद्धा आवश्यक है। वस्तुतः श्रद्धा के बिना सब साधनायें अपंग और अपाहज हैं।

श्रद्धा क्यों पैदा नहीं होती ?

अब प्रश्न है कि श्रद्धा क्यों पैदा नहीं होती। वह कौनसी वस्तु है जो उसके मार्ग में बाधा डालती है। किसी के विचार में 'संशय' श्रद्धा नहीं होनें देता, कई लोग तो मोह और अहंकार को इसका कारण बताते हैं यह सब ठीक है। पर इस ठगनी माया का प्रधानमन्त्री अहंकार है, संशय उसको सी. आई. डी. के विभाग का प्रमुख अधिकारी है। संशय आए, विश्वास टूटा, श्रद्धा और प्रेम न रहा। हमारी बुद्धि संशयात्मिका है, इसलिए हमारा काम नहीं बनता। हमें परमेश्वर में संशय नहीं परन्तु उसके कर्मफल देनें में हमको संशय है। यदि हमें इसमें विश्वास हो जाए तो हम कभी बुरा काम करें ही नहीं। जैसे एक निर्धन व्यक्ति मलिन और जीर्ण वस्त्र अब भी नहीं उतारना चाहता, समझता है कि नंगा हो जाऊंगा, इसी प्रकार हम अपने पुराने कुसंस्कारों के अभ्यास से कुवृत्तियों को छोड़ते नहीं। सांसारिक विषयों में हमारी प्रीति है। मोह में,

क्रोध में संशय नहीं हुआ। संशय हुआ परमेश्वर के कर्मफल देने के नियम में, संशय हुआ धर्म में। बुराई में किसी प्रकार का संशय नहीं। जैसे यदि हमारे सामने भोजन रखा हो और कोई संशय डाल दे कि इसमें तो विष है, हम अच्छे से अच्छे दीखनेवाले भोजन को भी ग्रहण नहीं करेंगे, उसका परित्याग कर देंगे, इसी प्रकार यदि हमें संशय हो जाए कि बुराई में विष है तो हम बुराई करें ही न, उसे छोड़ दें। अतः कहा कि 'वायवः स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे' इन्द्रियों को बांधों, पलटो, यज्ञ की ओर पलटो और मेरा (परमेश्वर) का कार्य करो।

जो लोग अपने देश तथा जाति का कार्य करते हैं, वे अपना काम करते हैं, परमेश्वर का नहीं करते।

परमेश्वर का कार्य कौनसा है ?

इसीलिए ऋषि ने लिखा कि संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्योद्देश्य है।' संसार परमेश्वर का है हमारा नहीं है, तो संसार का कार्य ही परमेश्वर का कार्य है, यज्ञ संसार का कार्य है इसलिए यज्ञ परमेश्वर का कार्य है। यज्ञ में ही विष्णु प्रतिष्ठित है, यज्ञ को विष्णुसे पृथक नहीं कर सकते, इसीलिए कहा, 'यज्ञो वै विष्णुः।' यह यज्ञ हमारे लिए नहीं, भूमि

विशेष के लिए नहीं अपितु सर्व संसार के लिए है। इस सिद्धान्त को आर्यों ने भली भांति समझा, इसलिए शास्त्रकारों ने मर्यादा बांधी कि ८ वर्ष से ७५ वर्ष तक ही हवन यज्ञ करो। क्योंकि इसका समझना और आचरण में लाना कठिन है। अनुमान लगाया कि इतने काल में मनुष्य पूरा ढ़ल जायेगा। कोयला हीरा बनता है, लाखों वर्ष लग जाते हैं। मनुष्य जन्म हीरा जन्म है, इसको जो पापों की कालिमा से कोयला बन चुका है, हीरा बनाने के लिए दीर्घ समय चाहिए।

श्रद्धा की मूर्ति श्रद्धानन्द

इसलिए कहा श्रद्धा को पकाओ। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपना नाम श्रद्धानन्द रखा, यह सहसा नहीं रख दिया, इस नाम को रखने के लिए बड़ी तैयारी करनी पड़ी। बालकपन में ही पुजारी रहा। सत्य की खोज की। पहले मुन्शीराम था, मुन्शीराम जिज्ञासु बना। सुना कि एक प्रकाण्ड पण्डित वेद का व्याख्यान दिया करते हैं, इच्छा प्रकट की कि उस महान् आत्मा के दर्शन करूं तथा व्याख्यान सुनूं। माताने कोठड़ी में बन्द कर दिया कि कहीं जादूगर के जादू में न फंस जाये पर फंस गया। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में कटिबद्ध हो गया। आर्यसमाज के प्रधान

बनाए गए। उस समय वकालत करते थे तो सोचने लगे कि क्या वकील होकर भी आर्यसमाज का प्रधान रह सकता हूं। यह श्रद्धा थी। आर्यसमाज कहता है, 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्याग करने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।' सत्य में उनकी कितनी निष्ठा थी, मुख्त्यारी पास करके आये, प्रैक्टिस करने लगे, उनके एजेण्ट ने बोर्ड लगा दिया 'लाला मुन्शीराम वकील'—देखा कि बोर्ड पर 'वकील' लिखा है कहा, नहीं, मैं तो मुख्त्यार हूं। एजेण्ट ने कहा, महाराज! वीलक और मुख्त्यार में कोई भेद नहीं है। कहा, नहीं। यह धोखा है एजेण्ट ने कहा कि वकील लिखने से काम चमकेगा। कहा, मैंने अपना नाम जिज्ञासु रखा है अतः बोर्ड ठीक कराओ।

एक सेठ आया, बन्दी (बही खाता) दिखाई, बड़ा भारी मुकदमा (अभियोग) था। बन्दी पर टिकट लगी हुई न थी, कहा तेरा मुकद्दमा नहीं चल सकता। जाओ। सेठ को मुन्शीराम जी पर श्रद्धा थी, एजेण्टों के पास गया, उन्होंने कहा, पुरानी टिकट लगा दो, २,४ दिन के पश्चात् आना जब वकील साहब को बात भूल चुकी होंगी। कुछ दिनों के बाद पुरानी टिकट

...गाकर सेठ साहिब एजेण्टों के पास आये और ४० रु०
...फीस देकर मुकद्दमा दे दिया। मुखतारनामे पर वकील
...साहब के हस्ताक्षर एजेण्ट नें करा लिए। प्रतिपक्षी
(Client) को वकील साहिब के पेश किया। अभियोग
...अदालत में दे दिया गया। निश्चित तिथि विपक्षी
(Defendant) अपने वकील सहित उपस्थित हुआ,
...सेठ जी भी आये। मुन्शीराम ने देखा, यह तो वही
...आदमी है जिसको मैंने इन्कार किया था। अदालत ने
...बयान लेना चाहा। मुन्शीराम जी ने कहा कि मेरा
...मुवक्किल झूठा है। बन्दी पर, जब मुझे दिखाई गई,
...टिकट न थी, मैं पैरवी नहीं करता। अदालत ने समझाया कि इस प्रकार तुम्हारा काम बन्द हो जाएगा।
...कहा-परवाह नहीं। झट ४० रु० मुवक्किल को वापस
...कर दिये और अपने एजेन्ट को निकाल दिया ५००)रु०
...मासिक आय थी, चोटी का वकील था, अदालत ने बहुत
...समझाया। कहा कि—"मेरे गुरु" की शिक्षा यही है,
...सत्य को ग्रहण करने, असत्य को त्यागने में सर्वदा
...उद्यत रहना चाहिए। मैं यह केस किसी अवस्था में
...नहीं ले सकता। यह समाचार सर्वत्र फैल गया। मुन्शी
...राम की वकालत का काम बैठ गया। इसका नाम है
...श्रद्धा, सत्य को धारण करना। जहां सत्य की झलक

दिखाई दे वहां टूट पड़े, और यदि असत्य की गन्ध आ जाए, तो वहां से तुरन्त भाग जाए अथवा उसका त्याग करदे। वेद ने कहा, "श्रद्धया सत्यमाप्यते" (यजु० १६-३०) श्रद्धा आत्मा का प्राण है। इसी प्रकार जिस आत्मा में श्रद्धा है उसका मूल्य है और जिसके अन्दर श्रद्धा नहीं है वह फूटी कौड़ी की कीमत का भी नहीं। प्राण निकल जाए तो अपने की भी कौड़ी कीमत नहीं है। संसार में चाहे और किसी की कीमत न हो परन्तु अपने घर में सन्तान की माता पिता के सामने और पति की पत्नी की दृष्टि में बड़ी कीमत है। निर्धन स्त्री भी कभी लाख रुपया मिलने पर पति को न बेचेगी और न माता पुत्र को, परन्तु जब प्राण निकल जायें तो उस शरीर की उन प्यारों के सामने भी कौड़ी कीमत नहीं रहती। इसलिए आत्मा का सबसे बड़ा अपना (बन्धु) परमात्मा है, यदि आत्मा के अन्दर श्रद्धा रूपी प्राण है तो आत्मा की कीमत है नहीं तो परमात्मा की दृष्टि में आत्मा की कोई कीमत नहीं।

श्रद्धा कैसे प्राप्त हो

परन्तु श्रद्धा बिना त्याग के प्राप्त नहीं होती।

त्याग और श्रद्धा का मेल है। हथेली का सीधा भाग श्रद्धा और पृष्ठ त्याग। त्याग में करुणा और श्रद्धा में प्राप्ति रहती है। सीधा हाथ करनेवाला भिखारी है। भगवान् के सामने हाथ पसारनेवाला भिक्षुक है।

श्रद्धा का फल

श्रद्धावाला दीन होगा, ऐसा दीन नहीं जो लोगों के द्वार पर सिर झुकाता फिरे। दीन बनेगा अदीन का। अदीन परमेश्वर है। अदीन के सामने दीन होना वीरता है, दीनों का दीन होना कायरता है। यह विलक्षण दीनता है। पुत्र पिता माता का दीन है परन्तु उसे कोई दीन नहीं कहता। पत्नी पति की दीन है परन्तु उसे कोई दीन नहीं कहता। इसी प्रकार भक्त जब अदीन का दीन होजाता है, तो वह उसका सखा बन जाता है, दीन नहीं रहता।

दृष्टान्त— एक राजा किसी साधु के पास गया, साधु ने पूछा कौन हो। राजा ने उत्तर दिया कि मैं महाराज हूं, स्वामी हूं। साधु ने कहा तुम तो मेरे सेवकों के भी सेवक हो, स्वामी कैसे हो। तुम तो विषयों के दास हो और यह विषय मेरे दास हैं।" अतः जब तक विषयों पर विजय न पाओगे, अदीन के दीन नहीं बन सकते।

श्रद्धा तो मनुष्य के अन्दर सदा विद्यमान है। परन्तु जब अहंकार आता है श्रद्धा टूट जाती है। परमात्मा की आशीर्वाद की धारा अनवरत रूप से प्रवाहित हो रही है, कूप का जल हर समय निकलता है, नहर का जल हर समय बहता है। परन्तु नमी वहां रहेगी जो उसके समीप है। जो भूमि का भाग दूर होगा वह शुष्क रहेगा। भगवान् के भक्त २४ घण्टे उसके समीप रहते हैं. उसका आशीर्वाद निरन्तर मिलता रहता है, वहां पानी देने की आवश्यकता नहीं इसलिये उसके अन्दर श्रद्धा २४ घण्टे रहती है, श्रद्धा न हो तो भक्त कैसे बने।

भगवान् करे कि श्रद्धा की जीवनी से हम श्रद्धारूपी गुण ग्रहण करके परमात्मा के श्रद्धालु भक्त बनकर अपने-अपने जीवन को उज्ज्वल कर सकें।

ओ३म् शम्।

पितृयज्ञ क्यों और कैसे

ओ३म् नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वासः। यजु० २-३२

यजुर्वेद कर्मकाण्ड का वेद है। मनुष्य को जीवन का लक्ष्य क्या बनाना है और कैसे बिताना है और उसके क्या क्या साधन हैं, यह सब कुछ इस वेद के अन्दर बड़े सुन्दर रूप से निरूपण किया गया है। जो मन्त्र आज हम पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं, वह उसी पवित्र वेद के दूसरे अध्याय का ३२ वां मन्त्र है। इस अध्याय में पितरों और यज्ञ के सम्बन्ध में वर्णन है।

इस मन्त्र में अनेक बार 'नमः' शब्द आया है। यह पद अनेक बार शुभगुण और सत्कार प्रकाश करने के लिए धरा है।

सबसे बड़ी बात

मनुष्यों के लिए सबसे बड़ी बात यह है कि जिस जन्म को उसने पूर्व जन्म के शुभकर्मों से प्राप्त किया है, उसमें यह न गिरे तो इस पद से हम न गिरें। यह हमारा सबसे बड़ा काम है।

मनुष्य और पशु में भेद

पशु जितने भी हैं वे जन्म से मरण पर्यन्त पशु रहते हैं। कुत्ता पैदा हुआ वह कुत्ता ही रहेगा, न गौ बन सकता है न गधा, इसी प्रकार गधा भी कुत्ता नहीं

बन सकता। कुत्ता कुत्ता और गधा गधा ही रहेगा। माता-पिता के रजवीर्य से उत्पन्न होकर उसी की पालना करते हैं. परन्तु मनुष्य रजवीर्य से पैदा होकर मनुष्य नहीं बना, बढ़ना तो दूसरी बात रही। बढ़ता है आयु से, कार्य से, बल से। यह तो सभी बढ़ रहे हैं। पशु पक्षी वनस्पति आदि सब बढ़ते हैं। नहीं बढ़ते तो ज्ञान में जो ज्ञान स्वभावसिद्ध मक्खी को है, चूहे बिल्ले अथवा कुत्ते को है, वह अधिक नहीं होता। मनुष्य का बच्चा कोरा अज्ञानी पैदा होता है। पशु अज्ञानी नहीं उसे माता का ज्ञान है जन्म से। मनुष्य को यह भी ज्ञान नहीं। पशु के बच्चे को चलने का ज्ञान होता है। उसे मां नहीं सिखाती और न उठाती। चाटने के बाद वह स्वयं उठता, फुदकता और चाटता है। और जिस भाषा को उसकी मां बोलती है, वह भी पैदा होते ही बोलने लग जाता है, उसको कोई सिखाता नहीं। जिस खाने को उसके माता-पिता खाते हैं वही खाता है। परन्तु मनुष्य का बच्चा उसके विपरीत है। माता ही खाना, चलना, बैठना और चूसना सिखाती है। मनुष्य का बच्चा तो कोरा अज्ञानी है यहां तक कि इसे मल-मूत्र का ज्ञान नहीं। मनुष्यों ने परमाणु बम बनाये। मनुष्य ज्ञान की वृद्धि करता है, ज्ञान से जाना जाता

है, ज्ञान से पूछा जाता है। पशु का ज्ञान जन्म से ही है इस वास्ते न वह उसे बढ़ा सकता है और न पूजा जाता है।

मनुष्य क्यों आया

तो इस सारी चर्चा का सारांश यह निकला कि मनुष्य इस संसार में इसलिए आया कि वह ज्ञान को बढ़ावे। कुम्हार थोड़ी मिट्टी से लोटा बना लेगा परन्तु घड़ा नहीं बना सकता, घड़े के लिए अधिक मिट्टी चाहिए। घड़ा बन जाए तो भी वह मिट्टी ही रहेगा। इसके विपरीत मनुष्य तो अद्भुत वस्तु बनाता है, किसके द्वारा, ज्ञान के द्वारा, परन्तु फिर भी प्रश्न है कि वह स्वयं क्या बना? उसको वह बनादे जो अन्तिम चीज है। अन्तिम चीज तो परमात्मा है, परमात्मा न सही, तद्वत् सही। कहलाय तो सही। परमेश्वर का नाम पुरुष है परन्तु उसका भक्त महापुरुष विख्यात है। ईसा महापुरुष प्रसिद्ध है। आज जो पूजा शंकर और बुद्ध की है वह भगवान् की कहां? मुसलमानों ने तो यहां तक कह दिया—

'खुदा खुद है सनाखां बनें मुहम्मद।'

अर्थात् परमात्मा स्वयं मुहम्मद की स्तुति करता है।

भगवान् क्या चाहता है ?

भगवान् को इसमें रोष नहीं। भगवान् वही चाहता है जो एक पिता चाहता है। पुत्र बढ़ जाए, पिता का मन प्रसन्न होता है। भगवान् तो अपने भक्तों को बड़ा बनाना चाहता है, वह भक्तों को प्रत्येक स्थान पर उठाये फिरता है। ईसा को, दयानन्द को, गांधी को, किसने फैलाया ? वह तो एक स्थान पर रहे। इसलिये मनुष्य इतनी उन्नति करे कि वह मिट्टी से सोना बन जाए।

सामवेद ने कहा—

'जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः।

सामο प्रο १-दशति ६, मंο १०

तू मनुष्य (परेण धर्मणा) परम उत्कृष्ट तपस्या और सदाचार के बल से (जातः) उत्पन्न हुआ है (यत्) क्योंकि (सवृद्भि.) अपने साथ लगे हुए इन्द्रियों के साथ मिलकर (अभुवः) तू सब कार्य करने में समर्थ है।

वह मनुष्य मिट्टी से सोना बन जाए और उस परम देव के साथ एक होजाय। लोहे को अग्नि में डालो, गरम होकर अग्नि समान चमकता है। हमारे अन्दर परमेश्वर ऐसे ही अन्दर बाहर है परन्तु हमारे मस्तिष्क, बुद्धि और ज्ञान में परमेश्वर न अन्दर है न

बाहिर। होता तो पाप क्यों करते ?

परमेश्वर तो सब स्थान में है परन्तु हमारे ज्ञान में नहीं है। आत्मा को तो परमात्मा की प्राप्ति करनी है। वेद ने तो स्पष्ट कह दिया—

"बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये"

सामः प्र० १. द० नं० ८

(भानवे देवाय अग्नये) कान्तिस्वरूप देव अग्नि के लिये (बृहद्वयः) आयु का बड़ा भाग (अर्चं) भक्ति रूप में दे दो।

इसलिये महर्षि दयानन्द ने कहा "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।"

अतः मनुष्य को इतनी उन्नति करनी चाहिए कि प्रभु का ज्ञान प्राप्त होजाय।

"सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म।"

वास्तविक ज्ञान ही प्रभु का ज्ञान है जो अनन्त है और सच्चा है। भगवान् नें तो चेतावनी दी :—

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टांल्लोकात्प्रणुदात्वस्मात्॥ यजु० २-३०

भावार्थ—जो मनुष्य अपने मन वचन और

शरीर से झूठ आचरण करते हुए अन्याय से अन्य प्राणियों को पीड़ा देकर अपने सुख के लिए औरों के पदार्थों को ग्रहण कर लेते हैं ईश्वर उनको दुःखयुक्त करता और नीच योनियों में जन्म देता है कि वे अपने पापों के फल को भोग के फिर भी मनुष्य देह के योग्य होते हैं इससे सब मनुष्यों को योग्य है कि ऐसे दुष्ट मनुष्य वा पापों से बचकर सदैव धर्म का ही सेवन किया करें।

इससे यह समझ लेना चाहिए कि वे मनुष्य अभागे हैं जो इस जन्म का मूल्य नहीं समझते, जिनके मन में और है वाणी में और, और कर्म में और है। भगवान् ने किसी भी प्राणी को मन देकर उसका विकास नहीं किया। वानर को प्रभु ने हाथ दिए, वह बड़ा नक्काल है पर अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकता। उसके मस्तिष्क में ज्ञान ही नहीं आया कि वह आग जला सके। पशु ज्ञान में उन्नति नहीं कर सकता इसलिए कि उसका मन विकसित नहीं और न वाणी दी। पशु अपने स्वार्थ के बिना और कुछ प्रकट ही नहीं कर सकते और न अपनी जाति को कुछ सुना सकते हैं। लेकिन मनुष्य तो अनेकों वाणियां बोल सकता है। एक हाथ से कितने काम कर सकता है?

प्रभु ने उसको तीन चीजें प्रदान कीं मन, वाणी और हाथ। अतः जो इनका दुरुपयोग करता है उसकी गति होगी नीच अर्थात् नीच योनियों में जायेगा। जिसके मन में बुरा विचार है जो वाणी से दम्भ से बोलता है, मन और वाणी का जिसका मेल नहीं, वह सत्यवादी नहीं, वह दम्भी है। दम्भ मनुष्य का काम नहीं नीच योनियों का है अतः वह नीच बनेगा। इसलिये कहा श्रेष्ठतम कर्म करो। इस पृथ्वी पर दो अरब मनुष्य होंगे गिनें तो। हम वास्तव में मनुष्य नहीं कहला सकते। यह तो भगवान् की कृपा है कि थोड़े पुण्य का अधिक फल देता है और बहुत पाप का थोड़ा फल देता है। इसलिए कहा कि कुछ लेना सीखो और देना सीखो। ऐसी चीज दे जिस पर लगे कुछ न और ऐसी लें जिससे सब कुछ मिल जाए। वेद ने कहा—

नमस्कार को दें इस पर कुछ नहीं लगता। जिस पर कुछ नहीं लगता वह हम देते नहीं। लेने को ज्ञान लें जिससे तर जाएं। अतः कहा "नमो वः पितरो रसाय" ज्ञानी आए गृहस्थी झुके, नमस्कार की और कहा महाराज, भाड़ा चुकाओ। मैंने नमस्कार की है इसलिए कि मुझे वह वस्तु दो, जिससे मुझको रस आए। क्योंकि जिस पदार्थ में रस नहीं उसको भूलकर

भी कोई मुंह नहीं लगायेगा। वसन्त ऋतु आती है, वनस्पतियों में रस आ जाता है। सब चीजें हरी भरी हो जाती हैं। रस तो मध्य में रहेगा।

रस कहां है ?

बाहर तो छिल्का ही रहेगा। बस, रस वहाँ है, जहां किसी ने छिपा दिया। परमात्मा की विद्या का नाम ब्रह्मविद्या गुह्यविद्या है अतः इस विद्या में रस है।

(२) रस आत्मा में है कि वह छिपा हुआ है।
(३) मन में रस है " " " " "
(४) धर्म में रस है " " " " "

इसलिए गृहस्थी कहता है कि पितरो ! मुझे वह मार्ग, वह साधन बताओ जिससे मेरे जीवन में रस आ जाए। परन्तु आज दशा ही विपरीत है। जब साधु किसी गृहस्थी के द्वार पर आता है तो कोई गृहस्थी उससे इस मार्ग की बात ही नहीं पूछता इसलिए मनुष्य को न मार्ग मिलता है न शांति आती है। जब तक वेद-मर्यादा का पालन था, शांति थी। साधु भी कर्त्तव्यच्युत हो रहे हैं। वह भी तो गृहस्थी से क्षेम कुशल ही पूछते हैं। इन गृहस्थियों को विधि बताई। क्या—पूछो।

फिर कहा पूछो—"नमो वः पितरो शोषाय" ऐसा कौनसा साधन है जिससे हमारे पाप सूख जाएं

जैसे ग्रीष्म ऋतु में वस्तुएं सूख जाती हैं। तीसरी बात कही, "नमो वः पितरो जीवाय" बताओ हमारे अन्दर जीवन कैसे आए। जैसे वर्षा सूखे खेत को हरा भरा कर देती है। हम भी निर्जीव हो चुके हैं, अमृतवृष्टि करो, हमें आचार, विचार, व्यवहार के रहस्य को समझाओ। चौथी बात पूछते हैं, "नमो वः पितरो स्वधायै" —वर्षा समाप्त हो जाए तो किसान अन्न बोता है। अन्न वह जो हमको खा जाए और जिसको हम खा जाएं। अन्न कठोर है। बाजरा, ज्वार, मक्की आदि कठोर हैं। हमें बताओ वह कठोरता हमारे अन्दर क्या है जो हमको खा जाती है और जिसको हम खा जाते हैं। वह है अहंकार। अहंकारी मनुष्य कठोर होता है। अहंकार न हो शरीर की पालना कैसे हो, जैसे अन्न पालना करता है। परन्तु वह क्या वस्तु है जो इसको गलादे? वह है ज्ञान। तो गृहस्थी पूछता है कि हमें ऐसा ज्ञान बताओ जिससे हम कठोर पापों को गला दें।

पांचवीं बात कहता है "नमो वः पितरो घोराय" हमारे जो दुष्ट आचरण हैं, जैसे क्रोध जो सबसे बड़ा पाप है। क्रोध के कारण मनुष्य बेसुध होजाता है। मद्यपान करनेवाले को इतना नशा नहीं होता जितना क्रोधी को होता है। लायलपुर के एक ग्राम की बात है

कि एक व्यक्ति ने मालिया (भूमिकर) देना था, नम्बर-दार मांगने आया। कहा-तीसरे दिन ले जाना। दूसरे दिन वह शहर में गया आभूषण तुड़वाकर १००) का एक नोट ले आया और लाकर अपनी धर्मपत्नी को दिया कि इसको रख दो। नम्बरदार जब आयेगा मालिया में देंगे। देवी नें कहीं रख दिया। घर में एक ही सन्तान थी छोटा सा बच्चा। बच्चे का स्वभाव है कि जो भी वस्तु देखें, मुंह में डाल देता है। माता पिता घर में नहीं थे, बच्चे ने कागज देखा और मुंह में डाल दिया। नोट घुलकर टुकड़े-टुकड़े होगया। दूसरी प्रातः को नम्बरदार आया, मांगा तो देवी ने तलाश शुरु की, देखा तो टुकड़े-टुकड़े हुआ पड़ा है। पुरुष को जो क्रोध आया बच्चे को उठा दोनों लातें चीरकर वध कर डाला। यह है चाण्डाल क्रोध का स्वरूप। क्रोध से बुद्धि नष्ट हो जाती है और "बुद्धि-नाशात् प्रणश्यति" बुद्धि नाश से सर्वस्व नाश होता है। अतः हे देवताओ विद्वानों! हमें ऐसे साधन बताओ जिससे यह महान् पाप हमसे दूर हो जावे।

ऐसे ही आगे पूछा 'नमो वः पितरो मन्यवे' ऐसी बात बताओ कि जिससे ऐसा जादू चले कि पाप बाहर ही खड़ा रहे, हमारे अन्दर ही न आ सके।

जब उपदेश हो चुके, शास्त्रमर्यादानुकूल पहले अपना काम कर लिया, फिर भोजन वस्त्र आदि से सत्कार किया ताकि ऐसा न हो कि आशीर्वाद से ही निपटारा करके चलता बने। यदि साधु ने गृहस्थी को प्रसन्न कर दिया तो फिर गृहस्थी भी मन से सेवा करेगा। परन्तु आज तो हम भोजन खिलाते हैं किसी अन्य स्वार्थ अथवा यश कमाने के लिये।

एक बार किसी गृहस्थी नें एक साधु को भोजन खिलाया। साधु भोजन कर रहा था कि वृद्धा माता आ गई, पुत्र को कहा, कहो ना। पुत्र नें कहा भोजन करलें फिर कहेंगे। माता नें समझा कि यह तो मूर्ख है कहेगा नहीं। कहने लगी। साधु जी ! यह तो नहीं कहता, कल इसकी पेशी है। यह तो पकड़ा जायेगा ऐसा आशीर्वाद दो कि छूट जाए। साधु ने कहा कि चार आनें की तूने रोटी खिलाई। यह व्यापार है। तू क्या मांगता है ? उठ खड़ा हुआ इसमें विष भरा हुआ है। आजकल तो यही हाल है। या प्रश्न करेंगे, सन्तान नहीं है। अब यदि साधु नें बता दिया तो उसको बहुत कुछ प्राप्ति हो जायगी। वेद ने तो मर्म की बात बताई। खाने खिलाने में एक रहस्य है। हमने न समझा। परम्परा से अतिथियों की सेवा चली आई।

वास्तव में मनुष्य को अन्न के बिना कोई चीज बांधने वाली नहीं है। बंध गया द्रोणाचार्य, बंध गया भीष्म पितामह। शरशैया पर पड़ा है, उपदेश कर रहा है, द्रोपदी पूछती है, दादा ! उस समय यह धर्म कहां था जब मेरा चीर हरण हुआ था ? कहा, पुत्री ! उस समय दुर्योधन का अन्न खाया था उसी से धर्म बंधा हुआ था, अब उसका प्रभाव रक्त द्वारा निकल चुका है तभी धर्म का मार्ग और नीति बता रहा हूं। इसलिये कहा सत्कार करो पितरों का अन्न से। कुत्तों को अन्न दो तो कुत्ते पूंछ हिलाते आयेंगे। दोनों को दो तो आशीर्वाद देंगे। तो अन्न वास्तव में बांध देता है।

कैसे ?

देखिये, अन्न खिलाया, मुख से उदर में गया तो अमाशय में रस बना, रक्त बना, मांस, अस्थि, मज्जा, मेद तथा वीर्य बना। बाल बना खाल बना। जिसने खिलाया शरीर उसका बन गया, दो चपातियों से मानो साधु को खरीद लिया। "जिसका खाइये उसी का पाइये" "खावे मुख, लजावे आंख" —ये लोकोक्तियां प्रसिद्ध हैं। जैसा अन्न वैसा मन। जिस भाव से खिलाओगे वही भाव खानेवाले के हो जायेंगे। आत्मा अन्न के आश्रय है। बल आया आत्मा स्थिर है बलवान् है।

साधु भगवान की तपस्या कर रहा है, भजन बना तो भोजन खिलाने वाले को भी प्रसाद मिला। भजन न बना तो खिलानेवाले को दण्ड मिला। तो मानो यह साधारण बात नहीं है। उसका सम्बन्ध स्थूल शरीर से ही नहीं, सूक्ष्म शरीर में जायेगा। आगामी जन्म में भी उसकी सेवा करेगा। जिन लोगों ने दिलाने के भाव से अथवा दम्भ से खिलाया, वह स्वयं परतन्त्र हो जायेगा। वह साधु भी परतन्त्र हो जायेगा। परन्तु जो साधु अग्नि के समान है, वह सबको भस्म कर देता है। जो साधु गृहस्थी के अवगुणों को दूर कर देता है तो गृहस्थी का सुधार हो जाएगा। जैसे—अग्नि अन्धकार को निकालकर प्रकाश कर देती है ऐसे साधु गृहस्थी का खाकर उसका अज्ञान अवगुण दूर कर दे और प्रकाश कर दे तो उस साधु पर कोई ऋण नहीं रहता।

तो सबसे महत्व की बात जो वेद ने कही है वह यह कि नमस्कार करो पितरों को, विद्वानों को, अतिथियों को, उनका भाड़ा चुकालो और भाड़ा भी ऐसा दे जिससे कोई ऋण साधु विद्वान् पर न रह जाये।

ईश्वर सब पर ऐसी कृपा करें पितृयज्ञ का वास्तविक रूप फिर से जीवित हो जाये।

ओ३म् शम्।

ओ३म्

भगवान और मन

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् । तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ।।

महानुभावो ! सच्ची बात को सुन तो सब कोई लेता है पर मानता कोई कोई है । वेद सच्ची बात कहता है हमारी भलाई के लिए कहता है परन्तु कौन नहीं मानता ? उत्तर होगा कि मन नहीं मानता । कारण कि मन की प्रतिस्पर्धा (मुकाबला) है परमात्मा के साथ, अपने अभिमान में नहीं मानता । जितनी वेद शास्त्र की मर्यादाएं हैं, शास्त्रों के उपदेश हैं अथवा साहित्य है ये सब मन को दर्शाने के लिए हैं । जिसने जाना और माना वह मनुष्य बन गया और जिसने आचरण भी तदनुसार बना लिया वह देव बन गया । जिसने अपने आपको अर्पण कर दिया वह मुक्त होगया । जिसने नहीं माना उसके लिए उपदेश है । हम नहीं

मानते, अतः बार-बार सुनना पड़ता है और उपदेश रूप में सुनाना पड़ता है। वास्तव में मन का मुकाबला परमात्मा के साथ है। एक अलंकार में आपको बताता हूं। अलंकार को संवाद रूप में दर्शाया है :—

मन (परमात्मा से)– तेरे और मेरे में क्या भेद है ? तू महाराज है तो मैं छोटा राजा हूँ। तू अधिराज है तो मैं His Highness हूं। मैं अपने राज के अन्दर राजा हूं, तू अपने के अन्दर।

परमात्मा -- मेरे अन्दर बड़ी शक्ति है। मैंने इस सृष्टि को बनाया और बिना कारण के बनाता हूं। मुझे किसी प्रकाश अथवा यन्त्र की आवश्यकता नहीं होती। गर्भकाल कोठड़ी में बिना किसी प्रकाश सहायता, अथवा यन्त्र के जीव के लिए आकार घड़ता हूं।

मन—रात्रि को अन्धकार होता है। मैं चांदना करता हूँ। स्वप्न में ही ७ मञ्जले गगनचुम्बी भवन खड़े कर देता हूँ। जहाज चलाता हूँ, सहस्त्रों यात्री उन में बिठा देता हूँ। तू अपनी सृष्टि के लिए कितना विस्तृत आकाश और पृथिवी को घेर लेता है, मैं थोड़े से स्थान पर ही सब कुछ कर लेता हूँ।

परमात्मा—(चकित होकर) मैं अपनी सामर्थ्य से बनाता हूँ। आदिम सृष्टि में जवान-जवान स्त्री पुरुष

पैदा करता हूँ। मेरे पास कोई Design नहीं है।

मन—जैसे तेरे पास है वैसे मेरे पास है। तू केवल युवा सृष्टि रचता है और वह भी आदि में, मैं तो बूढ़े, बच्चे युवा सब ही रच लेता हूं। मैं मनुष्य को सींग लगा देता और कभी कभी पशु भी बना देता हूँ, विलक्षण आकार भी दे देता हूँ, मानव और पाशविक देह इकट्ठी मिला देता हूँ तू तो नहीं कर सकता।

परमात्मा—तू तो बिना सुने देखे नहीं बना सकता। (स्वप्न देखी अथवा सुनी हुई बात का आता है)।

मन—तू भी देखी बनाता है। आप ही वेद में कहते हैं, 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्'।

यह सुनकर भगवान् तो मानो मन को बनाकर फंदे में फंस गया। कुछ विलम्ब के पश्चात् कहा :—

परमात्मा—मैंने तो देवताओं को बनाया आकाश, सूर्य, चन्द्र, विद्युत आदि। विद्युत तथा शब्द की पति १८६००० मील प्रति सैकण्ड रखी।

मन—सूर्य पृथिवी से साढ़े ९ कोटि मील दूर है, सूर्य की किरण तो पृथिवी पर ८ मिनट में पहुंचे परन्तु मैं तो पलक भर में वहां पहुंच जाता हूँ। विद्युत क्या करेगी ?

परमात्मा— अच्छा ! और देखिये । अंगारे के अन्दर मैंने वह शक्ति रखी कि वह जले तो संसार को भस्म करदे ।

मन—द्वेष की अग्नि मेरे से जले तो राज्यों के राज्य विध्वंस करदे । महाभारत के युद्ध में द्वेष की अग्नि ही तो थी ।

परमात्मा—मेरी वायु चले तो वृक्षों को, मकानों को गिराकर परे फेंक दे ।

मन—तेरी वायु तो जड़ को ही गिरायेगी । मेरी कामरूपी वायु चले तो ऋषियों और तेरे भक्तों तक का पतन करदे ।

परमात्मा—मेरी पहुंच बड़ी है जहां तू पहुंचता है वहां मैं पहले ही विराजमान हूँ ।

मन—मेरी भी कम नहीं ।

परमात्मा—जिस पापी पर दया करता हूँ, क्षण में धर्मात्मा बना देता हूं ।

मन—मेरे ही द्वारा ।

परन्तु अब मन झींपने लगा और हार मानकर कहा कि तू सर्वव्यापक है मैं एक देशी हूं । तू सर्वज्ञ है, मैं अल्पज्ञानी हूं । तेरा मेरा क्या मुकाबला हो सकता है, मैं हारा क्षमा करो भगवन् ! आप जीते ।

परमात्मा—मैं सर्वान्तर्यामी भी हूँ। तू नहीं। रे मन ! तू भूला हुआ है। जब तक यह नहीं जानता और मानता, तब तक तेरा कल्याण नहीं हो सकता और मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। परमेश्वर सर्वव्यापक सर्वज्ञ और सर्व अन्तर्यामी है। वह मन से भी वेगवान् है। जहां मन पहुंचे वहां वह पहले उपस्थित है। जो मनुष्य जानता है और मानता नहीं अथवा मानता है और जानता नहीं वह मुक्ति को प्राप्त नहीं हो सकता अतः जानना, मानना और आचरण में लाना परम आवश्यक है।

संवाद समाप्त हुआ। अब प्रश्न यह है कि यह ज्ञान कैसे हो। मनु महाराज ने कहा :—

आद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति॥

मन सत्य से शुद्ध होगा। जैसा विचार उत्पन्न हो, वैसा वाणी से प्रकट हो, वैसा क्रियान्वित हो तो वह सत्य है। तभी मन शुद्ध होगा, तभी वह इस ज्ञान को प्राप्त कर सकेगा। आंखें इसको नहीं जान सकतीं। आंख देखने के बाद प्रेम करेगी अथवा घृणा। मित्र से प्रेम, रिपु से घृणा होगी। कानभी सुनेगा तो प्रेम करेगा अथवा द्वेष। मधुर वचनों से प्रेम और कटु से अप्रेम

होगा । यही नासिका तथा रसना इन्द्रिय का हाल है । स्वादिष्ठ से प्रेम, कटु को थू थू । कारण कि इन्द्रियों में विकार है । विकारी कैसे निर्विकार को प्राप्त हो । मनुष्य का शेष रहा मन, जब तक मन में विकार है, परमेश्वर के पास नहीं बैठ सकता । बड़े-बड़े विद्वान् जब भक्ति में बैठते हैं, मन साथ नहीं देता । सैनिक, कप्तान, मेजर, सूबेदार दनदनाती तोपों का मुकाबला कर लेंगे, विद्युत की कड़क सह लेंगे परन्तु परमात्मा की भक्ति में नहीं बैठ सकते । इतना शूरवीर भी निर्बल है इसलिए कि मन के अन्दर विकार है । विकारी मनुष्य बलवान् होता हुआ भी परमेश्वर की पूजा में नहीं बैठ सकता ।

मंसूरी में देखा कि कमजोर दुबले पतले शरीर धारी पीठ पर कोयला उठाये पहाड़ों पर चढ़ रहे हैं, कहीं थक जाते हैं तो विश्राम ले लेते हैं पर उद्यमहीन नहीं होते । एक ऐसे हृष्ट पुष्ट कार्य देखे जो हाथ पसारे भिक्षा मांग रहे हैं । मैंने कहा कि जिनका शरीर सबल है उनका मन निर्बल है और जिनका शरीर कमजोर है उनका मन सबल है । किसी के आगे हाथ पसारने में उनको लज्जा आती है ।

मन की निर्बलता तथा सबलता, हमारी श्रेष्ठता,

जप-तप, दान यज्ञ, पूजा पर निर्भर है। मन के अन्दर यदि विकार नहीं तो जिस प्रकार अग्नि छोटी वस्तु को स्वीकार कर लेती और उसका विकास कर देती है, फैला देती हैं और यदि स्वीकार न करे तो पड़ी रहती है और कुण्ड में पड़ी गल सड़ जाती है। इसी प्रकार जब तक परमेश्वर हमें स्वीकार न करे तो हमारा जीवन गल सड़ जायेगा, परन्तु जिस समय परमेश्वर स्वीकार कर लेता है तो वह स्वयं उसका विकास कर देता अथवा फैला देता है।

सावधान—मनुष्य का अच्छा गुण, कर्म, स्वभाव भी कभी-कभी उसके पतन का कारण बन जाता है अतः सावधान! जरा विस्तार से विचारिये। मनुष्य को दो चीजें किसी शुभ कर्म के बदले में मिलीं, एक रूप अथवा सौन्दर्य और दूसरा मधुर स्वर। रूपवान् अपने रूप से और मधुर स्वरवाला अपने मधुर स्वर से संसार को आकर्षित कर लेता है। जाती-पाँति के बन्धनों को उलांघ कर भी। एक से आँख मोहित हुई और दूसरे से कान। कान से हम श्रवण करते हैं, आँख से साक्षात्। श्रवण पहली मंजिल है और साक्षात् अन्तिम मंजिल है। श्रवण को यदि हम साक्षात् न करें तो हमारी जीवनयात्रा पूर्ण नहीं होती। हमने सुना,

परमेश्वर आनन्ददाता, सुखदाता और दयालु है अब उसका साक्षात् करें। परमेश्वर मुक्ति का दाता है अब उसका साक्षात् करें। जो कुछ हम सुनते हैं उसको साक्षात् करने के लिए आंखें मिलीं। नासिका हमें प्राण के लिए मिली। प्राण आ जा रहा है। आंखें खोलनी पड़ती हैं। कान सोते समय बन्द हो जाते हैं। नासिका हर दम खुली है। आंख कान हमारे वहीं। वैज्ञानिकों ने लोहे के, रबड़ के आदमी बना दिए, विद्युत् द्वारा उनसे सर्वप्रकार की सेवायें भी कराईं, होटलों में थाली परोसना, भोजन खिलाना, पानी पिलाना, मालिश कराना, गोली चलाना आदि कार्य कराए। जड़ पदार्थ में रिकार्ड भर दिये, सुई लगाई, ध्वनि निकलने लग पड़ी, राग रंग होने लगे परन्तु आंख और कान का काम वैज्ञानिक लोग न कर सके और न कर सकते हैं। यह रबड़ आदि की पुतलियां न देख सकती हैं न सुन सकती हैं। हाथ का काम तो कर लिया।

तो आंख और कान आत्मा के करण हैं।

इसलिये इनके द्वारा ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

एक समय आया। लायलपुर में एक बड़ा त्यागी तपस्वी सज्जन रहता था। जिसने धारणा कर रखी थी कि आयु पर्यन्त ब्रह्मचारी रहूंगा। देश और जाति

की सेवा करूंगा। एक समय वेदी पर उपस्थित होकर जब स्वर से कुछ बोला (ईश्वर कृपा से स्वर कोयल का सा था) श्रोता रो पड़े। एक देवी ने जो बहुत रूपवती थी, सुना और मोहित होगई। जब अपने निवास स्थान पर पहुँचा तो देवी ने वहां पहुँचकर प्रार्थना की कि मैं आपसे विवाह करना चाहती हूँ, उसने कहा मैं माता पिता का इकलौता पुत्र हूँ, सम्पत्तिशाली हूँ, मेरी प्रतिज्ञा ब्रह्मचारी रहने की है। परन्तु देवी स्वर पर मोहित हो चुकी थी और ब्रह्मचारी रूप पर लट्टू होरहा था। शेक्सपियर ने कहा है Who ever loved that loved not at first sight ? ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा जल विन्दु की तरह सूर्य की किरण के सम्मुख विलीन हो गई। विवाह होगया। जतोई में एक वेश्या आई उसको कोयल के नाम से लोग सम्बोधित करते थे। बड़े-बड़े अफसर, रईस पतित हो गए।

भगवान् ने यह स्वर और सौंदर्य दिया था किसी विशेष कर्म के बदले, अब उसके गिराने का कारण क्यों हो ? उसने पूर्व जन्म में कोई शुभ कर्म परमार्थ बुद्धि से किया तो उसे स्वर अथवा सौन्दर्य मिला, तो मान लेंगें कि उसके परमार्थ अथवा भक्ति में कोई विकार था। धनी होना दान का फल है, उसने

दान तो किया था परन्तु अपनी इच्छानुसार नहीं, विवशता से अथवा भय अथवा लज्जा से किया था। बलात्कार (दान) से हुआ। अतः उसे धन तो मिला पर कृपण बना, क्योंकि दान मनसे नहीं किया था। अब धन पाकर भी दुःखी है। रखवाली करता है आज्ञा नहीं कि अपने तथा परस्वार्थ के लिए उसे खर्च कर सके। इसी नियम के आधार पर जो भक्ति करता है परन्तु विकारसहित तो मानो वह भक्ति को दूषित कर रहा है।

दूषित कैसे होती है ? दो दोष हैं, एक है दिखावा (दम्भ)। उत्तम से उत्तम कर्म किया फल मिलेगा। उसके बदले में मिला सौंदर्य परन्तु चूंकि मेरे कर्म में दिखावा था अतः सौंदर्य मिला संसार को दिखाने के लिये और वही मेरे लिये पतित होने का कारण बना। कोयले का जितना भाग अग्नि में पड़ेगा, उतना ही चमकेगा, बाकी काला रहेगा। हाथ को कालख लगेगी। मेरी भक्ति में कालख थी, सौंदर्य तो मिला परन्तु दिखाने के लिये और पतित होगया। दिखावा बाहर की वस्तु है अन्दर की वस्तु है कपट। कपट को प्रकट करनेवाली है वाणी। छली व्यक्ति मधुर स्वर में अपने भावों को प्रकट करेगा। इसलिये कि दूसरा आदमी फंस जाय। विश्वास करके खिचा

आए। भगवान् ने दे दिया स्वर। भक्ति तो थी परन्तु उसमें कपट था, इसलिए सुरीलेपन से पतन होगया। अब दोनों सूरतों में सबसे बड़ी ऊंची चीज भक्ति है और सबसे बड़ा शत्रु काम है। सौंदर्य से काम के कारण पतन होगया। स्वर से लोभ और काम के कारण पतन होगया।

आज हमारी पूजा, यज्ञ, तप स्वीकार नहीं होता त्रुटि को देखें, कहां है! स्वभाव से हम नम्र हैं। परन्तु यदि मनुष्य दिखावे से नम्रता करता है तो दम्भ है। हमको फल तो मिलेगा परन्तु हमारा जीवन दम्भी रहेगा। लोग हमारे साथ दम्भ करेंगे। उसका जीवन लोगों के परमार्थ के लिए होगा परन्तु जब तक सच्चाई को दम्भ से ब्यान करेगा, लोग विश्वास न करेंगे। मध्य में दम्भ होगा, लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए श्रद्धा दिखाते हुए सेवा करेंगे। जैसे बोवेंगे वैसा काटेंगे।

साधकों की चढ़ाई बड़ी कठिन है। क्योंकि सर्व-अन्तर्यामी भगवान् ने कहा कि धोखे में न रहे कि मेरा निज नाम तो ओ३म् है। बड़ा प्यारा नाम है। जो मेरी प्रेम और सत्याचरण भाव से शरण लेता है उसकी, अन्तर्यामी रूप से अविद्या का विनाश करता हूँ। प्रभु

पूजा के भावों को जान लेता है कि प्रार्थना कहां से निकल रही है, प्राण से, मन से, बुद्धि से अथवा आत्मा से।

परमेश्वर की भक्ति नमस्कार के रूप में है। नमस्कार तीन प्रकार का है।

(१) भौतिक—बाहर, माथा टेक दिया। लगाया उठाया ही नहीं। ऐसे बहुत व्यक्ति हैं जो मस्जिद, मन्दिर में जाते हैं, सिर उठाते ही नहीं ऐसा नमस्कार दिल से है परन्तु बाहर से है।

(२) दैविक—यह वह नमस्कार है कि जब नमस्कार करने वाला नमस्करणीय के सामने जाता है, आंखों में प्रेम की नमी आजाती है।

(३) आध्यात्मिक—जब नमस्कार करने वाला प्रेमी के पास जाता है, सब बातें भूल जाती हैं। एक तार होजाता है। पुत्र परिवार आदि सबका ख्याल भूल जाता है।

भगवान् को जिन्होंने चित्त में एक बार देख लिया, अन्दर बांध लिया, बिठा दिया। एक चित्त है, नमस्कार की आवश्यकता ही नहीं, वह अन्दर ही अन्दर नमस्कार कर रहा है।

भौतिक रूप से हाथ जोड़ वन्दना करते तथा सिर झुकाते हैं। दैविक में प्रार्थना हो रही है, आंखें तर ही तर हैं।

हमारा नमस्कार प्रायः व्यावहारिक अथवा शिष्टाचारपूर्वक है। ऐसा नमस्कार स्वीकार नहीं होता। जहाँ नमस्कार में पूर्ण श्रद्धा है, मन से आत्मा से नमस्कार है तो प्रभु उसे स्वीकार करते हैं। अतः वेद नें, यजु ४०-१७ में, बतलाया :–

"जो मेरी (परमात्मा की) प्रेम और सत्याचरण भाव से शरण लेता है उसकी अन्तर्यामी रूप से मैं अविद्या का विनाश कर उसके आत्मा को प्रकाश करके शुभ गुण कर्म स्वभाववाला कर सत्यस्वरूप का आवरण स्थिर कर योग से हुए विज्ञान को दे और सब दुःखों से अलग करके मोक्ष सुख को प्राप्त कराता हूं"।

इस मन्त्र में अपना स्वरूप तथा निज नाम (ओ३म्) बताकर सिद्धि और फल बताया।

अब प्रश्न है योग से विज्ञान कैसे सिद्ध हो।

उत्तर—इसका विज्ञान शुद्ध मन से होता है जिसके लिये तीन बातें आवश्यक हैं :–

(१) धर्मात्मा हो (२) विद्वान हो (३) योगी हो। तीनों गुण इकट्ठे हैं। धर्मात्मा यदि विद्वान् न हो

तो ईश्वर, जीव, प्रकृति जो जुदा-जुदा हैं, उनका वास्तविक ज्ञान वह कैसे प्राप्त करेगा ? आत्मा जुदा है कर्म करने में स्वतन्त्र है परन्तु कर्म फलदाता और है जो शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य भुगतवाता है। अब यदि धर्मात्मा भी हो, विद्वान् भी हो और योगी न हो तो भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। वैसे तो सब भोगी योगी हैं। योग सबके लिए है। "योगाश्चित्तवृत्ति निरोधः" चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है। दुकानदार, सुनार, चोर सब एक चित्त होकर भोग भोग रहे हैं तो मानो, सारी त्रिलोकी योगी है। परन्तु वास्तविक योगी तो वह है कि जो इस आत्मा का परमात्मा से मिलाप करदे, जिसकी चिति शक्ति भगवान् में लग जाय। वही योगी परमात्मा का साक्षात् कर सकता है अन्य को साक्षात् नहीं होता।

अतः हमें यत्न करना चाहिए कि हम किसी मञ्जिल पर चढ़ जाएं। प्रथम श्रेणी में दाखिल भी हो जाएं कभी तो दूसरी श्रेणी में चढ़ ही जायेंगे। प्रथम में ही स्वीकार हो जायें। दिखावा और कपट को छोड़ दें।

छोटे से छोटा कार्य भी जिसमें दिखावा और कपट नहीं, वह स्वीकार हो जाएगा। सदा अपने कामों

की पड़ताल करते रहें, यदि हम संसार के लिए बोलते और करते हैं तो यह दिखावा है, स्वीकार नहीं होगा। इस स्थल पर एक दृष्टान्त देकर इस बात को अधिक स्पष्ट करना चाहता हूँ।

कहते हैं तानसेन अकबर सम्राट के समय बड़ा रागी था। अकबर को राग सुनाया करता था, अकबर सुन सुन कर दंग रह जाता। एक दिन अकबर ने तानसेन से कहा, तानसेन ! तेरा राग तो हमनें सुना तेरे गुरु का भी सुनते जिसनें तुम्हें यह राग सिखाया है। तानसेन अकबर को साथ लेकर गुरु की कुटिया पर गया, अकबर को बाहर बिठा दिया, आप कुटिया के अन्दर चला गया। देखा तो गुरुजी समाधिस्थ हैं। अब क्या करे कैसे करे, एक सूझ आगई। वीणा उठाई और रागनी अलापने लगा, स्वर को तनिक बेस्वर कर दिया। गुरु नें सुना और झट आँखें खोलकर कहा, अरे मूर्ख ! यह क्या करता है. नाम को लजवाता है, इधर ला। वीणा लेली। गुरु ने राग अलापना शुरु किया, वही राग जो तानसेन प्रायः अकबर को सुनाया करता था, ऐसी लय में गाया कि अकबर जो बाहिर बैठा सुन रहा था, मूर्छित होकर गिर पड़ा। राग समाप्त हुआ। तानसेन गुरु की आज्ञा लेकर कुटिया के बाहर

निकला तो अकबर को मूर्छित पाया। होश में लाया। अकबर ने पूछा, तानसेन ! यही राग बीसियों बार तुझ से सुना पर मूर्छित कभी नहीं हुआ, आज पता नहीं तेरे गुरु नें क्या कर जादू चलाया कि सुध बुध न रही। तानसेन नें कहा कि सम्राट् ! मैं गाता था तुम्हें प्रसन्न करनें के लिए और गुरु नें गाया परमेश्वर को खुश करने के लिए, तभी तेरी यह अवस्था हुई। उसका राग स्वामी के लिए था और वह इसमें तन्मय होगया, स्वयं तन्मय हुआ, श्रोता की भी सुध बुध जाती रही।

अतः जब तक मेरी प्रत्येक क्रिया परमेश्वर के लिये नहीं, मेरा किया कराया सब विनष्ट है। घर में मैं रोटी खाता हूँ, यह मेरा दिखावा नहीं, परन्तु यदि उसी घर में औरों को रोटी खिलाऊं तो यह दिखावा होजाता है, इसलिए सावधान हो जायें, विकार को समझें कहां है ? मैंने उपदेश किया और अन्त में झांकने लगा कि जनता को कैसा पसन्द आया। बीज बोदिया और उखेड़-उखेड़ कर देखने लगा कि उगा है कि नहीं।

परमेश्वर करे कि हम इस मर्म को समझें और वेद की आज्ञाओं का पालन करते हुए जीवन को सफल बना सकें।

ओ३म् शम्।

वेदोपदेश

ओं देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् । आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषे अनूचीना जीविता मानुषेभ्यः । यजु० ३३-५४

वेद में सब विद्यायें प्रभु ने भर दी हैं । जैसे भूखे को रोटी चाहिए, वैसे मनुष्य के ज्ञान के लिए इस मन्त्र में युद्धविद्या कृषि शिल्प-विद्याओं का वर्णन है । यह मन्त्र याज्ञिकों के लिये है । मेरा इष्ट भी यज्ञ था । गायत्री जाप और यज्ञ से मेरी यह धारणायें बनी हैं । यज्ञ सिद्ध करनेवाले देव कहलाते हैं । वेदवेत्ताओं में याज्ञिक कितने हैं ? कर्त्तव्य समझकर जो काम किया जावे वह यज्ञ कहलाता है । यज्ञ के बहुत अर्थ हैं । वेदों का यज्ञ महान् यज्ञ है । सूर्य चन्द्रादि देवता प्रभु-कार्य कर रहे हैं । जो परमेश्वर का कार्य करे वह देव है । बिना मुआवजे के हमारे लिए प्रभु प्रकाश और वायु प्रदान कर रहे हैं । अन्न, जल, वायु को शुद्ध करता है । मनुष्य की चीजें हैं इस यज्ञ का काम । तीनों इन कामों को जो करता है वह देव कहलाता है ।

हमारे अन्दर आत्मा विद्यमान है यदि आत्मा से हमारा कल्याण नहीं हुआ तो यह सूर्यादि के समान जड़ देवता बनेगा । अग्नि जड़ है । उसमें डाले पदार्थ

भी जड़ हैं। पर हमारी भावना चेतन है। हमारा उद्देश्य तो चेतन (आत्मा) को चेतन (प्रभु) से मिलाना है। वही सच्चा देव है। मोक्ष-भाव से वह सच्चा सुख देता है। हम सोते हैं पर प्राण आ जा रहा है। हमारी आत्मा जागती रहे। ज्ञान बिना आत्मा चेतन नहीं होती। जागती हुई आत्मा मोक्ष को प्राप्त करती है। इस संसार का सुख तथा पारलौकिक सुख प्रभु की देन है। वह भूर्भुवः स्वः एक है। शुद्ध प्राणदाता दुःख-विनाशक और सुखस्वरूप है।

जो इन तीन कामों को करते हैं वे देव कहलाते हैं। मनुष्य संसार में रहते हुए अपने परिवार को जीवन दान दुःखविनाश तथा सुख देता है। परन्तु यह यज्ञ नहीं है। संसार के प्रति निःस्वार्थ भावना से यह कार्य यज्ञ कहलाते हैं। इनके करने से याज्ञिक विष्णु समान बन जाता है। वह सम्पूर्ण संसार में फैल जाता है।

यज्ञ सिद्धि का अर्थ है—यज्ञ का वास्तविक स्वरूप। यह हमारे में आजावे। अग्नि का ताप तो आयेगा पर प्रकाश भी आयेगा। आत्मा जगने पर प्रकाश अन्दर टिकता है। हमारे अन्दर अज्ञान रात्रि है। वहां प्रकाश का क्या काम। प्रकाश में अन्धकार का क्या काम।

यज्ञ के रूप को आत्मा में धारण करनेवाला ही यज्ञ के रूप को जान सकता है। आग समिधा की कठोरता तथा उसके आर्द्रत्व को नष्ट कर देती है इसी प्रकार यज्ञ हमारे अहंकार को नष्ट कर देता है। ऐसा देव मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। हम अपनी आत्मा को समिधा बनादें, प्रभु के अर्पण करदें, तो कठोरता रूप अहंकार के नष्ट होने पर प्रकाश मिलेगा।

प्रत्येक एक दूसरे को अधीन करना चाहता है। राजा प्रजा को, मित्र मित्र को। बली पशु निर्बल पशु को। पर प्रभु के स्वभाव से यह बाहर है कि कोई मेरे वश में हो।

अदीनाः स्याम शरदः शतम्। प्रभुप्रेम के भूखे हैं भगवान् ने सारे संसार को हमारे अर्पण कर दिया। अपने आपको हमारे समर्पण कर दिया। माँ सन्तान को दीन बनाना नहीं चाहती। वह मंगलमयी मां है। प्रभु अपनी अमृत भक्ति का रस देता है। मां जैसे स्तन पिलाती है। हमारी आत्मा में संसार के विषयों से कठोरता आगई है। इसे प्रभु अर्पण करो। यह चीज मोक्ष वालों के लिये है।

यजुर्वेद अध्याय ३३ मन्त्र ५२ के भावार्थ में ऋषि लिखते हैं कि जैसा सुख अपने लिए चाहते हो

वैसा दूसरों के लिए चाहें। यह आसान रास्ता है। जैसा अपने लिए सुख पहुँचाते हो वैसा दूसरों को भी पहुँचाओ। सर्वे भवन्तु सुखिनः हम यह बोलते तो हैं पर हमारे अमल में नहीं है। निष्काम सुख तो मातृ-भाव है। इसलिये इनका नाम "देवी" रक्खा। इन देवियों के हृदय में भगवान् ने अपने आपको बिठा दिया है। स्तन में माता के भगवान् स्वयं हैं। ऐसे वह योगियों के हृदय में भी हैं।

जो विद्वान् हैं जनता को अधर्माचरण से पृथक् करके स्वयं भी उनका अनुसरण करें। सदा अपने को अधर्माचरण से पृथक् रक्खें यह उनका यज्ञ है। न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः प्रभु का आकार तो है नहीं उसका कैसे स्मरण करें ?

पुत्र माता पिता की सेवा कर रहा है। उससे उसके भाव का पता लग जाता है। वह परमेश्वर है। उसका आशीर्वाद पहले है। निराकारोपासक ओं का जाप कर रहा है। गायत्री जाप कर रहा है। जाप पूजा करनेवालों को आशीर्वाद मिलना चाहिए मगर नहीं मिलता। उसका कारण यह है कि जड़ में ताकत नहीं कि वह किसी को आशीर्वाद दे। चेतन जड़ को आशी-र्वाद नहीं देता। इसलिये जो लोग जड़ की उपासना

करते हैं, वह भी आशीर्वाद से वंचित रहते हैं और जो चेतन की उपासना करते हैं पर जड़ बुद्धि से उन्हें भी आशीर्वाद नहीं मिलता।

आशीर्वाद एक Lift है, जो ऊपर ले जाती है। जाप करनेवालों को भी आशीर्वाद नहीं मिला। उन्होंने चेतनदेव समझा तो है, पर अपने को चेतन नहीं समझा। चेतन का जाप चेतन करे। आशीर्वाद तुरन्त मिलता है। वह महद्यश: है। आत्मा परमात्मा दोनों की खुराक यश है। आत्मा को प्रभु से खुराक मिलती है।

प्रभु की आज्ञा पालन करना उसका नाम स्मरण करना है। यह चेतन उपासना है। मैंने प्रभु को भूः प्राणदाता कहा। प्रभु सदा प्राण दे रहे हैं। मैं दूसरों के दुःख को दूर करूं। सुख पहुंचाऊं। स्वार्थ मैं तब करता हूं, जब मैं खुद को बढ़ाना चाहता हूं। स्वार्थ-रहित होने पर प्रभु आज्ञा का पालन करना आसान हो जाता है। यज्ञ स्वार्थत्याग सिखाता है। प्रभु का डर सदा सामने रहे तो हम पाप करेंगे ही नहीं।

भर्गः का ध्यान करें। उसका फल है प्रभु का अनुग्रह, हमारे पाप नष्ट हो जायेंगे। अनुग्रह का फल है इन्द्रियों का निग्रह। यह हमारी उपासना का फल

है। कृपा तो हमारे कर्मों का फल है पर अनुग्रह हमारी उपासना का फल है। वह दीन नहीं होने देता। उसकी महाकृपा है। यही उसकी उपासना है।

आध्यात्म-सुधा

ओ३म् वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्
ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतं स्मर।
यजु० ४०-१५।

एक बार सब सस्वर गायत्री जाप करें। अपने खड़ताल, ढोलक, बाजा इत्यादि को भी साथ मिलायें। सबने साज बजाये, गीत गाया और एक स्वर से रस आया। यह रस ऋषियों को तार गया।

क्या ढोलक और बाजा को भी प्रभु के दर्शन हुए ? नहीं। प्रभू-पूजा में रस तो अवश्य आता है। रस तो वह है जिसके आने से संसार के रस फीके लगें। अगर उसके मुकाबले में कोई और रस मीठा लगे, तो प्रभु नहीं मिलेगा चाहे उस प्रकार बजाते, गाते जन्म भी बीत जाएं। कारण—बाजा और ढोलक में भावना नहीं। जब मनुष्य बिना भावना के उपासना करता है, तो वह भी ऐसा ही है जैसे ढोलक, बाजा के स्वर। भावना का स्थान हृदय है।

कोयल मीठा बोलती है, पर वह मुक्त नहीं हुई। वीणा के स्वर हृत्तन्त्री को मोहित करनेवाले होते हैं, पर उसे प्रभु के दर्शन नहीं हुए। यह जड़ है, बजानेवाला चेतन है।

कोयल स्वयं बोल रही थी, उसमें भी भावना न थी। मत समझे कोई कि सदा भावना जागृत रहती है। मनुष्य वही है, जो हृदय की भावना के साथ कर्म करे। भावना यदि ज्ञान के विपरीत हो, तो वह फलीभूत नहीं होती।

सभी जप तप दान करते हैं। योग समाधि भी लगाते हैं। भावना तो साथ होती है, पर ज्ञान के विरुद्ध होती है। ज्ञान दो प्रकार का है, एक शुद्ध ज्ञान, दूसरा अशुद्ध ज्ञान। शुद्ध ज्ञान का असर आत्मा पर पड़ता है। यदि उस राग का प्रभाव आत्मा पर नहीं पड़ा, तो वह भी कोयलराग की तरह है। मीठा तो अवश्य लगेगा, पर प्रभाव शून्य होगा।

जीवन का ध्येय जीवनप्राप्ति है, न कि मौत की प्राप्ति। यदि हमारी क्रियायें चेतनता की ओर ले जाती हैं, तो वे जीवन लाभ देनेवाली हैं। पशु की मृत्यु शरीर से होती है, पर मनुष्य की मृत्यु अपयश से होती

है। उसका जो कार्य यश फैलाता है, समझो, उसे जीवनदान मिल रहा है।

तभी वेद ने कहा :—ओ३म् क्रतो स्मर। कृतं स्मर

यदि यश का स्थान कान है, तो समझो वह दीन गुलाम है। यदि स्थान हृदय की गुफा में प्रभु है तो वह अमर हो जायेगा।

संसार में दीन बहुत हैं। एक तो लूले लंगड़े हैं, दूसरे अन्धे और बहरे हैं। एक और बड़ा दीन है, जिसके पास बुद्धि और धन नहीं। इससे महादीन वह है, जो कान का दीन है। धनी और दानी कान के दीन हैं, इनका सारा कार्य जड़वत् होता है, इससे अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा।

दूसरा दीन जिह्वा का है। विद्वान् मनुष्य अपने कहे उपदेश की वाहवाही लूटना चाहता है, यह भी दीन है और उसकी सारी क्रिया जड़वत् है। उसी प्रकार आंख, नाक के दीन हैं। यह सूरतपरस्त और ऐयास हैं। चाहे यह ज्ञानी और धनी भी क्यों न हों ये कार्य आत्मा को उज्ज्वल नहीं करते।

यश के कार्यों को यज्ञ तो कहते हैं, पर वह द्रव्य यज्ञ है। इनसे संसार का कल्याण तो होगा। इसके साथ यदि भावना सम्मिलित हो, तो यज्ञ

कुछ कर देगा। चार चीजें हैं। दो अर्पण की, दो त्याग की। अर्पण तो घी, समिधा सामग्री का किया। त्याग नहीं किया। त्याग करता है तब, जब प्रेम हो, घृणा न हो। यदि यज्ञ में त्याग, प्रेम और ज्ञान सहित है, तो आत्मा उज्जवल हो जावेगी। यदि ज्ञान सहित नहीं, तो रुकावट उत्पन्न होगी, क्योंकि यज्ञ और प्रेम एक ही चीज हैं। स्वार्थ और वैर-विरोध का त्याग करें।

अर्पण करें अहम् को, कठोरता को। कठोरता गलने की चीज है। जब बड़ी शक्ति के आगे अर्पण हो जायें, तो कठोरता स्वय गल जायेगी, पत्थर की तरह पिस जायेगी।

अहंकार भी अर्पण करने की चीज है। जब मैंने कोई बुराई की, तो अहंकार ने डेरा लगाया, यदि प्रभु के सामने अर्पण हो जाए, तो सदा के लिए जीवित हो जायें। ऐसे ही जो प्रेम से, ज्ञान से अहम् को अर्पण करता है, तो वह मुक्त हो जाता है।

ओ३म् शम्।

आसक्तिरहित कर्म

ओं कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँसमाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

यजु० ४० ।२

यह मन्त्र आदेश करता है कि तुम्हारा जीवन किसी विशेष उद्देश्य को लिए हुए है । कर्म के बिना मनुष्य नहीं रहता । पशु इन्द्रियों से काम करते हैं । वह उनका स्वाभाविक काम है । पशु आँख से देखता है । मनुष्य आंख से देखता है बुलाता है और प्रेम भी कर लेता है । माँ बच्चे को कटु दृष्टि से भी देखती है और प्रेमभरी से भी । एक से तो वह कांप उठता है पर दूसरी से मुस्करा पड़ता है । पशुओं ने देखा या मैंने, यह हमारा स्वाभावसिद्ध कार्य है । पर इंगित करने बुलाने में मन तथा ज्ञान साथ था विशेष कर्म किया । दोनों में भेद यह हुआ कि मन के संकल्प से कार्य मनुष्य करता हैं । उससे हमारा कल्याण है । यदि भाव अर्पित हो जावे तो अपना पराया सबका लाभ हो । ऐसा कर्म करो जो छुटकारे का कर्म हो ।

माँ बच्चे को दूध पिलाती है । माँ बंधी है बच्चे के साथ । दांत दिये तो माँ बच्चे को बन्धन से छुड़ाती है । प्रेम घटता तो नहीं पर बच्चे के हित के लिए दूध

छुड़ा देती है। परमेश्वर का नियम है कि संसार के सब मनुष्य संसार की भलाई करते हुए उस बन्धन से मुक्त हों। बच्चा गोद में असमर्थ है, प्रभु नें बल उत्पन्न कर दिया अन्न के द्वारा। मां बच्चे को पेगूड़े में बिठाती है, गोद का बन्धन उठ गया। हित के लिए पृथक् किया। उसी प्रकार बच्चे की सारी जीवनी बन्धन में है। माता उसे छुड़ाती है। मृत्यु बन्धनों को काटती है। संसार में जो बखेड़े हैं उनमें लोग आसक्त हैं। मृत्यु हुई छूट गया बन्धनों से स्वतन्त्र हो गया। यह भी स्वाभाविक है जिसे हम मानते नहीं। हमारी वीरता इसी में है कि हम कर्म करते हुए जियें पर बन्धनों से मुक्त हों।

बच्चा होनहार हुआ २० वर्ष में मर गया पर मुक्त तो नहीं हुआ। जो माता पिता या गुरू से सीखा उसको फैलाता, पर मरने से वह कुछ कर्म न कर सका उसे आयु १०० वर्ष की चाहिए या भूयश्च शरदः शतात्।

नौकर और पशु छुटकारा चाहते हैं, कहते हैं कि दिन शीघ्र समाप्त होवें। जब मनुष्य अपने को मालिक समझ लेता है, तब कहता है दिन बड़ा हो, मेरी आयु बड़ी हो ताकि मैं अधिक काम कर सकूं।

संसार के व्यवहारों में पिता थोड़ी आयु में सब

के सब काम पूरे हुए देखना चाहता है। मैं ऐसे काम करूं जिससे मैं आवागमन के चक्र में न फंसू।

गृहस्थी सबका पालन करता है। पशु पक्षी अतिथि साधु अभ्यागत की सेवा करता है। ब्रह्मचारी ने २३ वर्ष पढ़ना है। वानप्रस्थी ने पढ़ाना है। संन्यासी ने उपदेश देना है। पर गृहस्थी की आयु २५ वर्ष है। काम बहुत है। बूढ़ा चाहता है कि पुत्र पोत्र को देखूं, विवाह भी देख लूं। इन २५ वर्षों में गृहस्थी ऐसे कर्म करे कि सब चाहना मिट जावे। वेद ने कहा "न कर्म लिप्यते नरे।"

मोह ममता आसक्ति ये ही तीनों बन्धन के कारण हैं। हमारा जीवन सत्य को अपनाये बिना सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। जब तक किसी व्यक्ति या पदार्थ के साथ ममत्व बुद्धि है तब तक वह असत्य है। आसक्ति (attachment) का लगाव ही दुःखदायी है। इन्द्रियों को वश में रखते हुए मन को एक निरासक्त अवस्था में सदा स्वस्थ रखना सत्य है।

नर=न रमते इति, जो विषय में आसक्त न हो। प्रभु ने हमें नर बनाया इसलिये हम आसक्त न हों। पर आसक्त तो है नहीं। पर अन्न खिलाना चाहती है। बन्धन से वह हटना चाहती है। स्त्री-पुत्र परिवार

महल अटारी में रहे रमण भी करे पर लिप्त न हो।

चिड़िया पक्षी को चौंच में देती है। पंख निकलनें पर लगाव छोड़ देती है। गाय मालिक के घर में २० वर्ष से है। मालिक को हानि हो, खुरली टूट जाए पर उसे उससे कोई आसक्ति (attachment) नहीं, हाँ केवल उस अवस्था में जबकि वह घास खा रही है, कोई और पशु आये, या तो उसे मारेगी या हटकर खड़ी हो जायेगी। और जब वह गर्भवती हो तब पहले बछड़े से भी ममता हटा देती है।

नर के लिए आदेश है कर्म कर 'न कर्म लिप्यते नरे।' आसक्त न हो। २५ साल तक करते जाओ। कर्म करो पर आसक्त न हो। यह तब होता है, जब वह ध्यानावस्थित हो जाता है। प्रभु तब जिम्मेवारी लेता है जब हम उसके अर्पण हो जाएं। नर को पापों से पृथक कर देता है।

प्रश्न होता है कि गृहस्थी आसक्ति न रखे तो काम कैसे चले ?

उत्तर--एक साधन है, प्रभु को संसार में रहकर जीत ले। पवित्र रहे। उसके लिए प्रेम आवश्यक है। यह अपनी चीज है। संन्यासी, वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी का सबके साथ प्रेम न हो सकेगा। पर एक गृहस्थी की

पशु-पक्षी कीट-पतंग सबके साथ प्रेम और हित की भावना होगी। गठबन्धन ही प्रेमको उत्पन्न करनेवाला हो यह साधन है साध्य का। प्रेम स्वाभाविक है। यह जीवात्मा का आवश्यक तत्व है। दुई मिटने पर एक हो जाते हैं। यह पापों का नाश करता है। पापवृत्ति तब नहीं उठती जब प्रेम हो। संशयरहित विशुद्ध सत्य का नाम प्रेम है। उसमें दगा छल नहीं होता। कोई पाप नहीं होता। लज्जा भय शंका का स्थान नहीं होता।

अबोध बच्चे के पिता की दाढ़ी हिलाने पर, छाती पर उधम मचाने पर, मूतने पर, पिता सहन कर लेता है। क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार नहीं रहता। प्रेम के होने से तारतम्य हो जाता है। यह गुण गृहस्थों के पास है। इससे जिसको चाहे जीत सकता है। प्रेम नाम है निष्काम कर्म का।

हाथ में भोजन ले जाने से और किसी को खिलाने से आदर नहीं होता। पर ढ़ांपकर ले जाने से प्रेम प्रकट होता है। जैसे मां बच्चे को प्रेम से खिलाती है ऐसे ही भगवान् अपने भक्त को आदर और प्रेम से खिलाते हैं। कहता है:—'अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः। प्रभु कहते हैं मैं अन्न हूँ। यह प्रेम है शुद्ध प्रेम के होते ही पति-पत्नी, माता पुत्र में द्वैध भाव नहीं रहता।

पाप नहीं होता। इसके न होने से गृहस्थी सैंकड़ों पाप करता है। जब वह वानप्रस्थी व संन्यासी बनेगा तो उस गुण से उसने प्रभु को मानो खरीदा हुआ होगा।

हम कर्म क्यों करते हैं ? अपने अहम मम को प्रकट करने के लिए। कर्म करने से कर्मकर्ता की प्रकृति जानी जाती है। यज्ञ में सामान रख दिया, आहुति आप देते हैं पर ध्यान अन्यत्र होने से आहुति बाहर गिर गई। तो इससे कर्मकर्ता की प्रकृति का पता लग जाता है। यह कर्म करने से ही प्रतीत होता है। कर्म से ही अहम् प्रतीत होता है। 'इदमग्नये इदन्न मम' मेरे कृत कर्म से ही प्रकट हो कि मुझमें मम भाव नहीं। अर्पण भाव हो। यह प्रेम अर्पणसहित कर्म निष्काम कर्म होता है। कर्म ही प्रेम को प्रकट करता है।

भगवान् करे जो मैं यह कह रहा हूँ, आपकी और मेरी समझ में आजावे तो मेरा और आपका बेड़ा पार हो।

ओ३म् शम्।

संग्रहीता—लखपति शास्त्री बी० ए०

विद्यावाचस्पति

कलियुग का ऋषि सत्य का प्रकाशक और प्रचारक दयानन्द

वेद जो ईश्वरीय ज्ञान है वह है तो अनादि काल से। इसलिए सत्यता भी अनादि काल से है परन्तु इस कलि काल में यह ज्ञान और सत्यता लुप्त सी हो गई थी। यह नहीं कि वेद संसार में न थे अथवा इसका मन्त्र पाठ करने वाले न थे या इनको पढ़ने वाला कोई न था। वेद भी थे और पाठक भी ऐसे-ऐसे थे जो यजुर्वेदी, ऋग्वेदी, सामवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी कहलाते थे। जिन्हें समस्त वेद स्वरसहित कंठस्थ थे। वे नित्य-प्रति बड़ी श्रद्धा और मान के साथ पाठ करते थे। यहां तक कि चौबीस घण्टे जब तक उन्हें निद्रा न आती पाठ करते रहते। खान-पान के समय के अतिरिक्त जब वे चलते फिरते थे तब भी पाठ करते जाते और इतना आदर सम्मान वेदों का करते थे कि नंगे पांव चलते, चमड़े का जूता पहनकर वेद का उच्चारण, मुख से बोलना, वेद का निरादर तथा पाप समझते थे परन्तु वेदज्ञान और सच्चाई निर्जीव सी हो गई थी। चुनांचे ऐसा समय आगया था कि जब अंग्रेजों का राज्य आया और ईसाई मत के प्रचारार्थ प्रचारक योरुप आदि देशों से आए तो उन्होंने कलकत्ता में आर्यजाति के पूर्वज

भगवान् राम और कृष्ण के चरित्र की जनता में चित्रों तथा जादू के लालटैन (magic lantern) के द्वारा दिखा दिखा ऐसी खिल्ली उड़ाई कि हिन्दू जाति के अनेक प्रसिद्ध और अक्षर ज्ञान रखनेवाले विद्वान् भी अपने वेद शास्त्र और पूर्वजों से घृणा करके ईसामसीह की भेड़ों में सम्मिलित हो गए। स्कूलों और कालेजों में इतिहास की पुस्तकों में वेद को गडरियों के गीत लिख के विद्यार्थियों के मन तथा मस्तिष्क वेद से उपरत होने लगे थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने जो ब्रह्मसमाज के नेता थे। जाति तथा देश के बड़े हितचिन्तक थे, अपने आर्य हिन्दू धर्म वेद में आस्था रखने वाले थे, ईसाई मत के प्रचार को रोकने के लिए और वेद की सत्यता प्रकट करने के लिए कलकत्ता के ब्राह्मणों को बहुत सा द्रव्य देकर काशी में भेजा कि वहां जाकर वेद को पढ़ आवें ताकि प्रतिरोध कर सकें। जब वे ब्राह्मण देवता काशी पहुंचे और वहां के धुरन्धर विद्वान् वेदपाठियों की शरण गए और वेद सुना तो उन्होंने मन्दभाग्य से ऋग्वेद का मण्डूक सूक्त सुना तो वहां मेंडकों की टर्र-टर्र और भिन्न प्रकार की टर्र टर्रों और भिन्न प्रकार के मण्डूकों की ध्वनि का वृतान्त सुना, उन्होंने जब अर्थ पूछे तो पढ़ने वाले विद्वानों ने कहा कि वेद का अर्थ

मनुष्य नहीं कर सकता। यह अनर्थ है। जब भगवान् ने वेद बनाये तो अपने मन्त्रों के अर्थ भी वह आप ही कर सकता है। इससे वह निराश होकर लौट आए और महर्षि देवेन्द्रनाथ से कहा कि वेदों में तो मेण्डकों की टर्र-टर्र ही लिखी है। भला वह ईश्वरीय ज्ञान क्या? जिसमें मण्डूकों की टर्र-टर्र और मण्डूकों के सूक्त लिख दिए हों। ईसाई पादरियों की सच्चाई का विरोध करना असम्भव है, हमारे वेदों में सत्य कहां? कालिजों संस्कृत विद्यालय के विद्यार्थियों के भी ऐसे-ऐसे सूक्तों के पढ़ने से विश्वास टूट गए थे और वह भी सचमुच वेद को गडरियों के गीत के अतिरिक्त कोई ऊंचा स्थान मन में नहीं देते थे।

प्रभु की अपार कृपा हुई कि ऐसे घोर अन्धकार अज्ञान के समय जबकि समस्त हिन्दू जाति वास्तविक विद्या से हीन, शासन से दीन और ब्रह्मचर्य शक्ति से क्षीण हो चुकी थी, एक ऐसे सन्त को भारत में जन्म दिया जो कलिकाल के सर्व सन्तों में शिरोमणि सन्त कहलाये। यद्यपि उन सब सन्तों ने अपने-अपने काल में पतित लोगों को उठाया, प्रभु की ओर नाम दान देकर लगाया परन्तु वे सब सन्त परम सत्य के अंश को लेकर उसी में तल्लीन हो गये।

पूर्ण सत्य की विद्या तो केवल वेदों से ही प्राप्त हो सकती थी। उसकी अन्यत्र खोज व्यर्थ थी। वे सन्त जन भक्त और महात्मा तो थे परन्तु ज्ञानी न थे। ऋषि दयानन्द जहां प्रभुभक्त था वहां वह वेदों के ज्ञान का अपूर्व पण्डित ज्ञानी था इसलिए उन्हें शिरोमणि सन्त कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है। ऋषि दयानन्द ने वेद के मन्त्रों में और वेद के ज्ञान में मानो प्राण प्रतिष्ठा की अर्थात् उन्हे ऋषि दयानन्द अपने आचरण में लाये। उनसे पहले वेदज्ञान और मन्त्र पाठ तो था ही परन्तु निष्प्राण और निर्जीव इसलिये था कि विद्वान और पाठक जैसा वे बोलते और कहते थे वैसा आचरण नहीं करते थे।

आचरण तभी हो सकता है जब बोले और सुने हुए का मनन और मन्थन हो। वे विद्वान् बेचारे श्रद्धा तो रखते थे, मान भी करते थे परन्तु अज्ञान के कारण अर्थ जानने, लगाने और मनन करने को एक दोष अथवा पाप समझते थे। परन्तु ऋषि दयानन्द ने मन्त्र के मनन और साक्षात् करने और आचरण में लाने का ही यत्न किया। जो जीवन बिताया जिसके इतने परि-श्रम, पराक्रम और पुण्य प्रताप से सब देश वेद की सच्चाई पर मुग्ध है। यद्यपि वे हठधर्मी से या संस्कारों

से अपने-अपने मत से बन्धे हुए हैं, तो भी वेद और वेद के सत्य ज्ञान के प्रकाशक और प्रचारक का सिक्का सब मानते हैं। यह एक नियम है सिद्धान्त और सचाई अपने आप में निर्जीव होते हैं उनमें प्राणप्रतिष्ठा सदैव आचरण से की जाती है। यह विशेषता इस कलिकाल में ऋषि दयानन्द महाराज के भाग्य में प्रभु ने प्रदान की जिसे हमको बार-बार नमस्कार करना चाहिए और स्वयं आचरण करके ऋषि के आशीर्वाद को प्राप्त करना चाहिए।

ऋषि दयानन्द महाराज से पहले विद्या का कितना अभाव था। शूद्र और नारी जाति के लिए वेद पढ़ना तो पाप गिना जाता था। उनके प्रताप से हिन्दू, सिख, मुसलमान, जैनी, फारसी आदि कोई भी ऐसा मत नहीं जिसके यहां अब नारी जाति की शिक्षा को पाप तो क्या, पुण्य न समझा जाता हो। सब मतानुयायियों ने कन्याओं के लिये स्कूल, पाठशाला तथा महाविद्यालय बना दिए हैं। गौ अनाथ तथा विधवा की पुकार सुनने वाला कोई नहीं था। सब धर्मवालों ने शालायें बनादीं जो अन्य मतों की पुस्तकों में बुद्धिविरुद्ध बातें मानी जाती थीं, आज उनका संशोधन रूप से उत्तर बना सकते हैं।

ज्ञान-कर्म-उपासना

ईंट में, पत्थर में, दीवार में प्रभु है और हमारे में भी प्रभु विद्यमान है परन्तु उनमें वह जड़ रूप में विद्यमान है और हम में चेतन रूप में। पशु पक्षी भी खाते हैं परन्तु उनका भरण भोषण केवल अपने लिए होता है। मनुष्य में ५ कोष हैं।

१. अन्नमय कोष पशु पक्षी मनुष्य सब में है। पर पशु जड़ता से खाते हैं, मनुष्य अन्न को सात्विक बुद्धि से खाता है। जो मनुष्य अन्न को अन्न न समझ कर खाता है वह भी पशु की तरह उदर पूर्ति करता है।

२. द्वितीय प्राणमय कोष है, बल पशु और हम में है, पर हमारे में जो बल की मात्रा है वह पशुओं से कहीं अधिक है।

३. तृतीय मनोमय कोष है। हममें विशेष चेतनता है पर पशुओं में वह नहीं है। हमारी चेतनता हमें आत्मसाक्षात् कराती है। पशुओं को नहीं कराती। तभी तो नामकरण संस्कार में 'कोऽसि' कहते हुए पिता पूछता हैं, और स्वयमेव ही अपने विचारों के द्वारा बच्चे की आत्मा पर प्रभाव डालते हुए उसे आत्म-साक्षात् कराता है।

४. चतुर्थ विज्ञानमय कोष है जिसके द्वारा मनुष्य प्रभुप्रदत्त बुद्धि से चमत्कारिक कार्य करते हुए बुद्धि की विलक्षणता दिखाता है जो पशुओं में कभी मिल ही नहीं सकती।

५. पञ्चम है आनन्दमय कोष। यह तो प्रभुदेव ने अपनी अपार कृपा से केवल मनुष्य को ही प्रदान किया है। यही कारण है इन कोषों की सहायता से हम ज्ञान-कर्म-उपासना में प्रवृत्त होकर इनके महत्त्व का अनुभव करते हुए जीवन में विशेषता उत्पन्न कर सकते हैं। सबसे प्रथम है कर्म "जो बन्धन से छुड़ावे" कर्म जड़ भी होता है जब हम किसी का हित न करते हुए काम करते हैं तो वह पशु कर्म होता है, परन्तु चेतन कर्म में ३ प्रकार की विशेषताएं होती हैं।

१. जनता का लाभ हो और उसके साथ ही जनता उसे स्वीकार करे।

वापी, कूप, तडागादि की व्यवस्था एक दूसरे के अन्ध अनुकरण से सभी कर सकते हैं परन्तु यह उतने लाभदायक सिद्ध नहीं होते जितने प्रभुप्रेरित कार्य सफलता देते हैं।

यज्ञादि में कोई स्वार्थ नहीं। यदि नित्यप्रति यज्ञ करने के पश्चात् भी हमारे जीवन में उसका कोई लाभ

नहीं हुआ और न ही जनता ने उसे अपनाया तो वह कार्य कर्म नहीं कहला सकता। श्री जगत् गुरु स्वामी दयानन्द जी के कार्यों को लोगों ने अपनाया चाहे उनके सिद्धान्तों को सर्व तन्त्र मानने में समय लगा, परन्तु अन्त में लोगों को मानना ही पड़ा, 'जादू वह जो सिर पर चढ़के बोले'।

म० गांधी की 'अहिंसा' को लोगों ने यहाँ तक कि पठान जाति (जो अपने अत्याचार से प्रसिद्ध थी) ने भी अपनाया—यह है कर्म।

२. प्रभु का आशीर्वाद—मैं काम करने के लिए जाता हूँ, मैं थक जाता हूँ परन्तु यदि मेरा ड्राईवर ले जारहा है तो २४ घण्टे चलने के पश्चात् भी मैं नहीं थकता। इसी प्रकार यदि परमेश्वर मेरे ड्राईवर बन जायें तो मैं काम करते हुए कभी न थकूंगा। जितने भी महापुरुष आये हैं उनमें पता नहीं कहाँ से असाधारण (Extraordinary) शक्ति आ जाती थी कि वे काम करते हुए थकते ही न थे। उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पण प्रभु को किया हुआ होता था। जिस प्रकार घर में बच्चे बीमार हैं, पति बीमार है और स्वयं गृहिणी भी बीमार है, सबकी सेवा करती हुई भी गृहिणी अपने में थकावट अनुभव नहीं करती। ऐसे ही यदि हमारे सभी कार्य

अर्पण बुद्धि से हों तो हम भी कभी नहीं थक सकते। यही प्रभु के आशीर्वाद की प्रत्यक्ष निशानी है। तभी भगवान् श्री कृष्ण नें कहा कि :—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥

म० गान्धी, जवाहरलाल जी, नेताजी अपनी शरीर की शक्ति से इतना काम नहीं कर पाये जितना कि प्रभु का आशीर्वाद उनमें इन्जेक्शन करता रहा है।

देखते नहीं कि हैदराबाद सत्याग्रह के समय में हमारी समाज की यह दशा थी कि कई आपस के झगड़े मिटने में भी न आते थे परन्तु परमात्मा के आशीर्वाद से (मेरे मन कुछ और था विधाता के मन और' सिद्धान्तानुसार) आर्यसमाज में ऐसी जागृति उत्पन्न होगई कि दिनों में वह कार्य सम्पन्न होगया जिसके लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता थी।

३ अन्त:करण की शुद्धि—तीसरी विशेषता यह है कि उस याज्ञिक का अन्त:करण प्रकाशमान होजाता है और मार्ग स्वयमेव खुला हुआ नजर आता है। परमात्मा उसके हृदय में और बुद्धि में ऐसी विलक्षणता उत्पन्न कर देते हैं जिससे वह स्वयमेव सांसारिक भ्रम-

जालों को मिटाने में सफल हो जाता है।

पाठ भूल गया हैं, गुरु से दोबारा पूछने के लिए गये तो गुरु ने कहा कि 'दयानन्द इससे अच्छा था कि यमुना में डूबकर मर जाते।' सुनना था उठे और २४ घण्टे लगातार समाधि लगाई। 'यथा ब्रह्माण्डें तथा पिण्डे' के अनुसार वायुमंडल में तो वे सब परमाणु विद्यमान थे। शब्द नित्य है इस आधार से अपने अन्तःकरण के अन्दर उन शंकाओं को दुहराया और विस्मृत पाठ ऐसा सामने आगया कि मानो गुरुजी साक्षात् पाठ दे रहे हैं। यह है अन्तःकरण की शुद्धि। जब भी कुछ रुकावट हुई फौरन प्रभु की शरण में चले गये और प्रभु पथ-प्रदर्शक बनकर मार्गदर्शक हुये। यह है शुद्ध कर्म की निशानी।

चेतन उपासना के भी तीन लाभ हैं

भक्त जब चेतन अवस्था में प्रभु की उपासना करता है तो सबसे प्रथम उसमें निर्भयता आजाती है, वह छाती तानकर अकेला संसार में उतर पड़ता है उस सिंह की तरह जो पानी के थपेड़े लगने पर भी सीधा तैरता हुआ विस्तृत नदी के वक्षःस्थल को फाड़कर चला जाता है। निर्भीक ऋषि दयानन्द अकेले

ही 'दृष्टिपूतं न्यसेत्पादम्' के अनुसार जंगल में अथवा स्थल में निर्भीक चले जाते थे। [मैं जब गुरुकुल कमालिया (लायलपुर) में पढ़ता था तो हमारे एक वानप्रस्थी कालीचरण जी ने बताया कि बनारस में उन्होंने स्वामी जी के दर्शन किए थे तो एक बार एक तंग गली में (रांड सांड सीढ़ी संन्यासी इनसे बचे तो सेवे कासी) इस कहावत के आधार पर एक सांड ने उनका मार्ग रोक लिया। स्वामी जी ने उसे सींगों से पकड़कर ऐसा पछाड़ा कि फिर जब कभी उस गली में आता तो लोग कहते 'दयानन्द आगया' इतना सुनते ही वह उल्टे पैर भाग उठता था। यह थी उनकी निर्भीकता कि अकेले नें उल्टी गंगा बहाकर दिखादी—संग्राहक]

(२) सत्यता--चेतन उपासना से उपासक को सत्य मार्ग का सहारा मिल जाता है और वह कहता है कि "योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः" उसमें स्वार्थ नहीं। वह तो दोनों के लिए समान रूप से कहता है कि प्रभो ! मैं यदि दोषी हूँ तो मुझे और नहीं तो मेरे विपक्षी को दण्ड दो हम आपके न्याय के जबड़े में है।

यही सत्यनिष्ठता थी जो ऋषि दयानन्द जी को

आदर्श सत्यवादी के रूप में प्रकट कर गई।

(३) चेतन उपासना से स्वावलम्बन की मात्रा उत्पन्न हो जाती है। उपासक आलस्य को छोड़कर स्वावलम्बी बन जाता है क्योंकि वह जानता है कि परमात्मा उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं। दया के सागर भगवान दयानन्द ने कीचड़ में धंसे बैलों के साथ लगकर गाड़ी के जुए को बाहर करते हुए कहा था कि मैंने किसी पर एहसान नहीं किया। मेरे मन में दया और करुणा उत्पन्न हुई उसको दूर करने के लिए मैंने यह प्रयत्न किया इसमें मैंने किसी का क्या उपकार किया? तो चेतन की उपासना के द्वारा उपासक स्वावलम्बी बन जाता है।

अब रहा शुद्ध चेतन ज्ञान।

इसके भी तीन लाभ हैं। यदि जड़ज्ञान हो तो साधक में क्रोध के परमाणु प्रकट हो जाते हैं। वह प्रत्येक पदार्थ में क्षोभ, ईर्ष्या और द्वेष की वस्तु देखता है। किसी की बढ़ती को वह सहन नहीं कर सकता। अपनी निन्दा सुनकर व्याकुल हो उठता है और अपनी प्रशंसा सुनने के लिए अधीर हो जाता है परन्तु चेतन ज्ञान से धीरता-वीरता और गम्भीरता ये तीन गुण उसमें आ जाते हैं। वह धैर्य धारण करके अपने ज्ञानका

स्वयं लाभ उठाते हुए दूसरों को भी उससे लाभ पहुं-चाता है। प्राय: देखा जाता है कि ज्ञानी मनुष्यों में धीरता नहीं होती वे अपनी निन्दा सुनते ही घबरा उठते हैं, परन्तु चेतन ज्ञान के साथ वह यह कहता है कि जब तक तो मुझे ज्ञान न था मैं 'द्विप इव मदान्धः समभवम्' (हाथी की तरह मदान्ध था) परन्तु जब विद्वज्जनों का सम्पर्क प्राप्त हुआ तो मद तो जाता ही रहा नम्रता और धीरता साथ आ गई।

महर्षि दयानन्द को जब अमृतसर में लोगों ने ईंट आदि मारकर तिरस्कृत किया तो उन्होंने कहा कि यह मेरे लिए फूलों की वर्षा हैं। सच जानिये कि पुराने लोगों में से जो ऋषि को उनके जीवनकाल में कटुवचन कहते थे कई ऐसे भक्त बने कि उनके प्रत्येक शब्द को प्रमाण वाक्य मानने लगें।

दूसरा गुण उनमें वीरता आ जाती है, वे अपने ज्ञान से पूर्ण वीर बनकर शरीर में कमजोर होने के पश्चात् भी साहसी और वीर बन जाते हैं। म० गांधी महात्मा बुद्ध जैसे व्यक्ति अपने ज्ञान से अंगुलीमाल जैसे डाकू और अंग्रेजों जैसे कूटनीतिज्ञों को बिना शस्त्रों के भी जीत सके।

(३) तीसरी विशेषता है गम्भीरता। उनमें

अधजल गगरी छलकत नाद' 'खाली बरतन तेज आवाज' के अनुसार खोखला और पोलापन नहीं होता। वे समुद्र की तरह शांत गम्भीर, पृथ्वी की तरह सहनशील, पर्वत की तरह दृढ़ होते हैं। संसार की कोई वस्तु उन्हें विचलित नहीं कर सकती। 'न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः। इस उक्ति के अनुसार वे संसार से विचलित नहीं होते और ना ही उन्हें कोई पदार्थ विचलित कर सकता है।

इस प्रकार चेतन, कर्म उपासना और ज्ञान से संसार के आनन्द को प्राप्त करके प्रभु का साक्षात्कार कर सकता है।

परमात्मा करे कि हमें शुद्ध-ज्ञान कर्म उपासना की शक्ति मिले और हम भी उसका साक्षात्कार करें।

आर्यसमाज की उन्नति कैसे हो ?

यह प्रश्न आपने अनेकों बार प्रेस तथा प्लेटफार्म से सुना होगा। प्रत्येक वक्ता अपनी-२ योग्यतानुसार इस प्रश्न का समाधान करता हुआ विधि विधान प्रस्तुत करता है। हम तो यह समझते हैं कि ऐसा प्रश्न उठा कर महर्षि दयानन्द का अपमान करना है। यदि आर्य-

समाज सच्चे हृदयसे उसे अपना गुरु और ऋषि मानता है जैसा कि यजुर्वेद के ३४ वें मन्त्र में ऋषि की पहचान बताई है। यदि दयानन्द आपकी दृष्टि में उस कसौटी पर पूरा उतरता है जैसा कि हमारा मत है कि वह पूरा ही उतरता है तो फिर क्यों उसके बताये मार्ग का पूर्णरूपेण अवलम्बन न करके इधर उधर झांकते हैं ?

प्रश्न का समाधान करने से पूर्व हम उस मन्त्र पर विचार करलें और फिर ऋषि के नुसखे (प्रयोग) को भी देखलें कि वह हमारे रोग की परमौषधि है कि नहीं। अस्तु —

लीजिए अब मन्त्र देखिए ! वह निम्न प्रकार है :—

सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः
सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा
अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥

यजु० ३४-४६

हे मनुष्यो ! जैसे (सहस्तोमाः) प्रशंसाओं के साथ वर्तमान वा जिनकी शास्त्र स्तुति एक साथ हो (सहच्छन्दसः) वेदादी का अध्ययन वा स्वतन्त्र सुख भोग जिनका साथ हो (आवृतः) ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्या पढ़ और गुरुकुल से निवृत्त हो के घर आए।

(सहप्रमाः) साथ ही जिनका प्रमाणादि यथार्थ ज्ञान हो (सप्त) पांच ज्ञानेन्द्रिय अन्तःकरण और आत्मा ये सात (दैव्या) उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रवीण ध्यानवाले योगी (ऋषयः) वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता लोग (रथ्यः) सारथी (न) जैसे (रश्मीन्) लगाम की रस्सी को ग्रहण करता वैसे (पूर्वेषाम्) पूर्वज विद्वानों के (पन्थाम्) मार्ग को (अनु, दृश्य) अनुकूलता से देख के (अन्वालेभिरे) पश्चात् प्राप्त होते हैं। वैसे होकर तुम लोग भी आप्तों के मार्ग को प्राप्त होवो।

भावार्थः—जो राग द्वेषादि दोषों को दूर से छोड़ आपस में प्रीति रखने वाले हों, ब्रह्मचर्य से धर्म के अनुष्ठानपूर्वक समस्त वेदों को जान के सत्य असत्य का निश्चय कर सत्य को प्राप्त हों और असत्य को छोड़ के आप्तों के भाव से वर्त्तते हैं वे सुशिक्षित सारथियों के समान अभीष्ट धर्मयुक्त मार्ग में जाने को समर्थ होते और वे ही ऋषिसंज्ञक होते हैं ॥४९॥

ऋषि ने कितने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मैं कोई नया मत चलाने नहीं आया। जो ब्रह्मासे लेकर जैमिनि ऋषि पर्यन्त का मतहै वही मेरा मत है और वही भाव पूर्ण शब्द उपयुक्त मन्त्र में "पूर्वेषाम् पन्यामनुदृश्य" विद्यमान हैं। ऋषि की पदवी तभी प्राप्त हो सकती है

जब ऊपर बताये मन्त्र के अनुसार समस्त वेदों को पढ़ तथा उन पर आचरण करते हुए पूर्वज ऋषियों के मार्ग का अनुसरण करते हैं। ऋषि तो मन्त्रद्रष्टा ही नहीं होते अपितु क्रान्तदर्शी होते हैं। शताब्दियों के बाद आने वाली घटनाओं तथा बातों को पहले बता देते हैं। किसी ने ऋषि को कहा, भगवन् यदि कोई योग्य शिष्य बना लिया होता जो आपके कार्य को जारी रखता, तो क्या ही उत्तम बात होती। ऋषि ने क्या ही सुन्दर उत्तर दिया, फरमाया मुझे शिष्य बनाने की क्या आवश्यकता है, सारा आर्यसमाज ही मेरा शिष्य है। तो आर्य भाइयो! ऋषि आपको एक अमानत सौंप गया, आप उसके पालन तथा रक्षा में शिथिल हो रहे हो, तभी तो यह प्रश्न उठाते हो। आप कर्म भी करते हो, जोर भी लगाते हो, फिर भी पर्याप्त सफलता नहीं होती। इस पर कभी विचार किया, उन्नति के साधन त्रुटिपूर्ण मानव कैसे बताये? उन्नति तो केवल आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द के बताये हुए नियमों के अनुसार ही होगी और कोई साधन ही नहीं।

सफलता कैसे हो?

किसी कार्य में सफलता नहीं हो सकती जब तक ज्ञान और भावना साथ-साथ न हों। भावना ठीक हो

और ज्ञान न हो, तो वह निष्फल, विफल और असफल रहेगी। ज्ञान शुद्ध हो, भावना न हो तो वह निर्बल और शिथिल होगा। एक दृष्टान्त से स्पष्ट हो जायगा। एक युवक पथिक जारहा था, आषाढ़ मास था। सीमा की गरमी थी। तृषा ने व्याकुल किया। कंठ शुष्क हो रहा था, ओष्ठों पर पपड़ी जम गई, जिह्वा बाहर निकल आई, मुख तमतमा गया। थोड़ी दूर गया तो पर्वत से पानी रिस-रिस कर आता देखा। किसी धर्मात्मा महानुभाव ने एक ताल उस झरने के साथ बनवा दिया था। ताल तो जल से पूरित था परन्तु जल निर्मल न था, गदला था। आश्चर्य में पड़ गया, अन्ततः विवश होकर जल के २-४ घूंट पिये, तृषा शांत की और विचार आया कि बनवानेवाले ने तो अच्छा किया, आते जाते पथिकों के लिये ताल बनवा दिया, जल मलिन होगया है। मन में परोपकार की भावना उठी। वस्त्र उतार लंगोट कसकर ताल में प्रवेश करके जल लोटे से निकालने लगा परन्तु ऊपर से जल पड़ भी रहा था। जितना निकलता उतना भर जाता। घण्टों बीत गये। एक साधु उस मार्ग से गुज़रा, कहा, नौजवान! क्या कर रहे हो। नौजवान कुछ थक भी चुका था, आवेश में आकर कहा, देखते नहीं हो अन्धे हो, पानी

निकाल रहा हूँ। साधु ने कहा, देख तो रहा हूँ परन्तु आप चाहे सौ जन्म भी पानी निकालते रहो, ताल खाली नहीं हो सकेगा। भावना तो तेरी अच्छी है परन्तु थोड़ी सी भूल है पानी की गति का रुख मोड़ दे। नौजवान ने बन्ध लगा पानी का रुख मोड़ दिया। ताल को थोड़ी देर में खाली कर दिया। देखा कि नाली में मिट्टी है, जल नाली से होकर आता है, मिट्टी मिल जाती है, इसलिये यह सारा जल गदला होजाता है। साधु ने कहा नाली में पत्थर रख दे। नौजवान ने नाली के तल में एक दूसरे के साथ जोड़कर पत्थर रख दिये तो २-४ घण्टों में ताल स्वच्छ जल से भर गया। नौजवान अपनी सफलता पर प्रसन्न होता हुआ अपने घर को चला गया। तो मित्रो ! ज्ञान और भावना दोनों का साथ-साथ होना आवश्यक है।

महर्षि ने एक नियम बनाया कि "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।" अकेले ऋषि दयानन्द ने दस वर्ष कार्य किया और जगत् को हिला दिया। आचार्य को दक्षिणा दे दीक्षा लेकर कुम्भ पर आया प्रचार करने को, परन्तु साहस न हुआ। अपने अन्दर कमजोरी को महसूस किया। ब्रह्मचारी था, विद्वान् था, कमजोरी

कैसी ? मन कमजोर होगया। तप की कमी अनुभव की। ऋषि दयानन्द से पहले भी धुरन्धर वेद के विद्वान् विद्यमान थे। मन्दिर भी थे, भक्ति पूजा भी होती थी। उनको आर्यसमाज बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? जहां एक कूप पहले मौजूद हो फिर दूसरा पास ही लगादे तो उसे लोग क्या कहेंगे। यदि वह कूप पूर्ण हो तो लोग उसे ईर्ष्यालु कहेंगे वरन् कूप लगाने की तो तब आवश्यकता है और बुद्धिमत्ता है जब पहले कूप में पर्याप्त जल न हो और यदि जल भी पर्याप्त हो परन्तु मीठा न हो तब इन त्रुटियों को समक्ष रखकर अन्य कूप लगाना आवश्यक होजाता है। ऐसे ही ऋषि दयानन्द को आर्यसमाज को जन्म देना पड़ा।

अब ऋषि ने देखा कि तप की कमी है। "तपः पुनातु पादयोः" दो काल संध्या में हम कहते हैं, पांव ने सारे शरीर का भार उठाया हुआ है, तप कर रहा है परन्तु फिर तप भी तो पवित्र होना चाहिए। एक टांग पर खड़े हो जाना, एक भुजा को ऊपर करके सुखा देना आदि तप नहीं है, यह तो दम्भ है। कहा "सत्यं पुनातु पुनः शिरसि" सिर को सत्यस्वरूप प्रभु, सत्य से पवित्र करो, जैसे शरीर में सिर ऊपर है, उसके बिना शरीर बेकार है परन्तु उसकी स्थिति तो पांव से है ऐसे

ही अध्यात्म में "सत्य" "सिर" है और "तप" उसका पांव है। देखा ज्ञान तो है, तप नहीं। तीन वर्ष पर्य्यन्त चंडी पर्वत पर जाकर तप किया और फिर कार्यक्षेत्र में उतरा। प्रचार किया, वेदभाष्य किया, अनेकों ग्रन्थ लिखे, शास्त्रार्थ किये, दुनिया को चकित कर दिया।

आर्यसमाज ने ऋषि के पीछे महान् कार्य किया। जो कार्य ऋषि दयानन्द ने दस वर्ष में किया, हम अपने अन्दर देखें कि ७० वर्ष में हमने कितना काम किया है? आशा थी कि गुरुकुल स्कूल और कालिजों से धुरन्धर विद्वान् और तपस्वी निकलेंगे परन्तु परिणाम असन्तोषजनक निकला। प्रायः आस्तिकता भाग रही है, फैशनपरस्ती और कम्यूनिज़्म बढ़ रहा है। स्कूलों में पढ़ा था "क" –कुत्ता, "ख" –खोता, "ग" –गधा आदि। ईश्वर जब सब विद्याओं का आदि मूल है तो ईश्वर का ज्ञान देने के स्थान पर गधे खोते का ज्ञान दिया। इतिहास, भूगोल, अर्थविद्या, गणित, रसायन तथा विज्ञान में तो ईश्वर को सर्वथा ही भुला दिया, तो फिर सफलता कैसे हो? हमने वास्तविक ज्ञान को लिया ही नहीं, पढ़ा ही नहीं।

किसी सज्जन के यहां भोजन करने गये तो उनकी दो पुत्रियां एक B.A., B.T. और एक मैट्रिक

सम्मुख आईं, मैंने पूछा, पुत्रियो ! नाक बड़ी है कि आँख ? आंख बड़ी है कि कान ? कहने लगीं कि दोनों ही बड़े हैं। दोनों तो बड़े हो नहीं सकते, एक बड़ा होगा। तो उस सज्जन ने कहा कि महाराज जी ! सैंकड़ों उपदेश सुने परन्तु याद नहीं रहते। मैंने कहा कि आपका कान बलवान् है नाक निर्बल है। अब यदि किसी अध्यापक से पूछ ही लिया जाए क्यों मास्टर जी ईश्वर दयालु और कृपालु कैसे है उत्तर मिलेगा पता नहीं। संध्या करते-करते बीसियों वर्ष बीत गये, कोई परिवर्तन ही नहीं आया। हालांकि महर्षि लिखते हैं कि ब्रह्म यज्ञ से आत्मा की उन्नति और अन्तःकरण की शुद्धि होकर ईश्वर प्राप्ति होती है। हमारा तो कुछ न बना।

इसका एकमात्र यही कारण है कि हम जो कुछ करते हैं ज्ञान और भावना का ऐक्य उसमें नहीं होता। ज्ञान है तो भावना नहीं, भावना है तो ज्ञान नहीं, हमारी असफलता का यही मुख्य कारण है।

संध्या के अंगस्पर्श मन्त्रों में चार वाक्, प्राण, चक्षु और कर्ण खुले हैं, नाभि, हृदय, कण्ठ और सिर बन्द हैं डाट लगे हुए हैं क्यों ? कभी किसी ने विचार किया ? आंख और मुख खुले हुए हैं, जब चाहें बन्द

करलें, कान और नाक बन्द नहीं हो सकते।

कवि ने कहा—

अन्दर के पट तब खुलें बाहर के जब बन्द।

प्रार्थना मन्त्रों में सर्वप्रथम कहा कि 'हे सवितः देव ! हमारे दुःख दुर्गुण, दुर्व्यसन सब दूर करदे और कल्याणकारक शुभगुण कर्म स्वभाव प्रदान करो।' फिर कहा 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' परमात्मा की स्तुति करते हुए कहा कि उस सुखस्वरूप परमात्मा की योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति करें।'

अब प्रायः आर्यसमाज में न योगाभ्यास है न भक्ति। भक्ति को तो अवैदिक सिद्ध करने के लिए प्रयत्न किये जाते हैं। भगवान् करें कि आप ऋषि के बताये मार्ग को समझें और इतस्ततः झांकने तथा वितर्क के स्थान पर उसके ही बताये मार्ग का श्रद्धा तथा प्रेम से अनुसरण करें, जनता तो स्वयं ही आपके पीछे-पीछे ही आयेगी। यही आर्यसमाज की उन्नति का एकमात्र अमोघ साधन है ऋषि को जानो, मानो और उसकी आज्ञा का पालन करो।

यज्ञमय जीवन

ओ३म् कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥
यजु० ४०-२

यह मन्त्र बड़े काम का है। इसे समझकर आचरण कर लेने पर मनुष्य का जीवन कमल के पत्ते के समान हो जाता है। कमल जैसे सदा पानी से ऊपर रहता है। लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार मनुष्य भी लिप्त न हो।

हम में से जितने भी मनुष्य स्त्री हैं, किसी की किसी के साथ शकल रंग रूप नहीं मिलता। सबका आकार है पर एक जैसा नहीं। यह सब कर्मों का फल है। किस्मत का नाम लेते ही हमारे हाथ की अंगुली माथे पर जा पड़ती है। वहां क्यों हाथ लगा ? तकदीर (भाग्य) ऊपर है, भोग नीचे है। जो काम किया अपनी अक्ल से किया। मूर्खतापूर्ण कार्य का फल दुःख और ज्ञानपूर्ण कार्य का फल सुख।

धन बहुत है पर सन्तान नालायक है। पूर्व जन्म में ऐसा कार्य किया कि धन तो मिला पर सन्तान अनुकूल न रही।

धन पास नहीं, पर स्त्री सुलक्षणी है सन्तानवाली है। आज्ञानुसार काम करती है तंग नहीं करती। माता पिता की सहायता न लेकर पति की मूंछ को नीचा नहीं होने देती। ताकि पति की आंख किसी के सामने नीची न हो। यह मन्त्र कितने काम का है। जितने

काम बुद्धि अनुसार किये जायेंगे वे सुखद होंगे अन्यथा दुःखद होंगे ।

'ज्ञान के साथ क्रिया सुकर्म है विपरीत विकर्म है' तो अर्थ-व्यर्थ-अनर्थ परार्थ और परमार्थ इन पांच प्रकार से कर्म पंचधा है। अब देखें कि हम कैसा काम कर रहे हैं। अर्थ तो स्वार्थ के लिए है परन्तु ऐसा कार्य करो जिससे वह अनर्थ और व्यर्थ न हो जाए। आप सुनने के लिए आए और सुना कुछ न, तो आना व्यर्थ हुआ। आप जा रहे हैं छड़ी हाथ में है। फूलों को तोड़ देते हैं किसी को लग गई तो भ्रमण व्यर्थ है।

जो चीज किसी के काम न आवे वह व्यर्थ है।

आपने यज्ञ किया अब देखो कि इसका क्या बना, अनर्थ तो नहीं बना। लोग यज्ञ के नाम से लोगों को बहका देते हैं तो अनर्थ करते हैं। अपने हाथ में तो कुछ न आया। अनर्थ में दूसरों का नुकसान होता है। यदि यज्ञ से परमेश्वर न मिला, शांति नहीं मिली, किसी की आशीः भी नहीं मिली तो क्या लाभ। निष्कामी यज्ञ का तो तत्काल फल मिलता है। कैसे ? बच्चा पैदा हुआ पता नहीं क्या बनेगा। पर माता पिता हर्ष से फूले नहीं समाते। आशा है, वे आशा (Positive) की रखते हैं Negative नकारात्मक नहीं रखते हैं। अब

क्या मिला । वह घर का चिराग बन गया, बाहर से आते ही थके हुए पिता को शांति मिल जाती है, आनन्दातिरेक से फूला नहीं समाता। सब द्विविधा थकावट दूर हो जाती है। छाती से लगाते ही गम दूर हो जाता है। बड़े मकान में एक बच्चा काफी है उसके अभाव में 'अपुत्रस्य गृहं शून्यम्' जिसके सन्तान नहीं होती वे पशु पक्षी को पाल लेते हैं।

कितना सौन्दर्यमय यज्ञ है। इसकी पहली चीज है सौन्दर्य। सजी वेदी सबको प्रभावित करती है। हमारे आंख, कान, नाक अन्दर धंसे चले जा रहे हैं। सब विषय अपनी-अपनी इन्द्रियों से खिंचे चले आते हैं। पुत्र काला है पर माता की आंख से काला नहीं।

सन्तान पैदा करने की इच्छा से यदि विवाह किया हो तो पशु भी सन्तान पैदा करते हैं। आप क्यों विवाह पर हजारों रुपये व्यय करते हैं ? हब्शी लोग भी सजधज से विवाह करते हैं। कौड़ियों को माथे पर सजाते हैं। पर यह सब कुछ सौन्दर्यार्थ है। परमात्मा पुरुष है प्रकृति स्त्री है। सौन्दर्य को उत्पन्न करने के लिए विवाह किया जाता है। 'विवाह' विशेष चाल, ऐसी चाल चले जो विशेष हो। चियोंटियां भी एक विशेष चाल से चलती हैं पर वह चाल नहीं। गृहस्थ

एक महान् यज्ञ है। इसका बाहर का ढांचा क्या सौन्दर्यमय है। जिसका दिल बाहर निकल जाता है वह पागल हो जाता है पर यह सौन्दर्य हमारे दिल में आ जाय। हम यज्ञमय बन जावें। हमने मिठाई रखी पर अनिमन्त्रित ही चीन्टियां पहुंच गईं। जड़ ने चेतन को खींच लिया। हमारा दिल विशाल नहीं इसलिए हममें कोई समा नहीं सका। हमारे मन में ईर्ष्या द्वेष हो 'प्रेम गली अति साँकरी तां में दो न समाय' जैसे यज्ञ सबको सम कर देता है। उठाओ तो राख ही है। सम हो गई। सबको समान सुगन्धि आ रही है। यह है यज्ञ-मय जीवन प्रभु यज्ञस्वरूप है।

गाय अपनी भावना से किसी को दूध नहीं पिलाती संसार में जो मां रोते बच्चे को दूध न पिलाये तो वह डायन कहलायेगी, परन्तु माता को तो चिंता पड़ जाती है। यज्ञ वसु है, बसानेवाला–माता पिता का स्वरूप है। याज्ञिक, संसार का माता-पिता बन जाता है। उसके हृदय में संसार बस जाता है। सबसे बड़ा सौंदर्य यही है कि हमारा जीवन यज्ञमय हो जाय। सबको खींच ले, जैसे लोहे को मिकनातीस (चुम्बक) खींच लेती है। ऐसे ही निष्काम कर्म का फल है। जिसमें फल की इच्छा न हो। अग्नि बिना भोगें प्रकाश और ताप देती है।

निष्काम कर्म लिपायमान नहीं होता। इसके विपरीत हमारा अर्थ, व्यर्थ और अनर्थ हो जायेगा।

४था काम हैं—परार्थ :—दूसरे के लिये हो, यज्ञ इसलिये नहीं किया कि लोगों को खुशबू पहुँचे। इसलिये किया है लोग लाभ उठा जावें नहीं तो दिखावा है। तात्पर्य तो यह है कि जीवन कल्याणमय होजाए यह है परार्थ।

यज्ञ में जब तक एक इष्ट देव को न बसाया जावे तब तक अहंकार रहेगा। विपत्ति में तो पुकारते हैं पर अहंकार के आधि से तंग गली में वह कैसे आवे ? बच्चा मां के दिल में समाया हुआ है। माता कहीं बैठी हो बच्चे का रुदन सुनकर दौड़ पड़ती है। सब कुछ भूल जाती है। इसका नाम है बसाना। बसाना तो मन में है। नाम लेते ही आकार सामने आजाये। उसे मन के कुण्ड में बसाओ। "ओं अग्न आयाहि वीतये" हे अग्ने ज्ञानस्वरूप हमारी पुकार से हमारे अन्दर आजाओ। हम यज्ञ के देवता को नहीं जानते। मुसलमान जब भार उठाते हैं तो "या इलाही" कहते हैं, उस समय प्रभु उनमें बसकर कार्य कराते हैं। उस प्रभु को तो उन्होंने नहीं देखा था उसकी बलवती सत्ता को समझते हैं, और उठा लेते हैं। इस यज्ञ का अधिष्ठाता है इन्द्र।

उसकी सत्ता को जान लें तो हम में प्रकाश और बल आ जायेगा। मन को दर्पण बनाओ। यज्ञ के समान कोई काम नहीं, प्रभु का प्रतीक है। प्रभु ने कहा कि मैं अग्निसमान हूँ। अग्नि राजा रंक, धनी, निर्धन किसी को नहीं देखती, सबको सुगन्धि देती है। किसी ने मुझे पिता शब्द से सम्बोधित किया, परन्तु मैंने टाल दिया। कौनसी चीज थी जो मुझे टालमटोल करा रही थी। वह था अहंकार। परन्तु मैंने सोचा प्रभु तो सच्चा पिता है वह तो टालता नहीं। वह सबको स्वीकार करता है। वह पक्षपातरहित है। अशुद्ध वस्तु को अग्नि की तरह शुद्ध करता है। मिट्टी सड़ा देगी, वायु सुखा देगी, पर अग्नि अशुद्धता दूर करके निर्मल बना देगी। दूध में पानी हो, अग्नि उसे खरा बना देगी। प्रभु ने कहा कि मैं अग्नि हूं। इसमें सब कुछ भरा है। मोटर, इञ्जन, बिजली सबमें आग है, पर वह तो हानिप्रदायक है, पर प्रभु रूप अग्नि की उपासना में तो लाभ ही लाभ है। हमारा कर्म परार्थ होना चाहिए।

५वां परमार्थ :—परम+अर्थ। परम तो प्रभु है। जो काम प्रभु के मिलाप के लिए किया जाय वही काम आत्मा का है। उस यज्ञ में कुछ भी व्यर्थ और अनर्थ नहीं है। श्रेष्ठतम कर्म है। सुन्दर कर्म तो वह है जो

दूसरों का कल्याण करे और आप सत्यस्वरूप हो जावे।

सौन्दर्यपूर्ण सृष्टि मानो ईश्वर का शरीर है। सबको लुभाती है। विष्ठा में पड़ा कीड़ा बाहर निकलना पसन्द नहीं करता। हम प्रतिदिन खाकर उसकी मूत्र विष्ठा बनी देखकर भी रोजाना यही कार्य करते हैं। बढ़िया से बढ़िया सेब खाओ, टट्टी बन जाये। बदबू आती है। पर हमारा प्यार इससे कितना है। लाखों रुपया खर्च करते हैं लोग वेश्यागमन में। जो प्रभु को पागल बनायेगा वह स्वयं पागल होगा। इसलिए हमारे सब अर्थ व्यर्थ और अनर्थ जाते हैं।

प्रभु के सब काम निरन्तर रूपेण कुछ भी किसी को बतलाए बिना परमार्थ भावना से हो रहे हैं। माता के गर्भ में बच्चे के लिए सब कुछ बनाया पर गुप्त है। जिसने उसे समझा वह तर जायेगा नहीं तो नरक में गिरना पड़ेगा।

भगवान् आप यह आशीर्वाद और शान्ति दे।

———

अनमोल मोती

अनखुटदान

मनुष्य का जीवन यज्ञमय है। वह सदा त्याग और दान करता है। दानवृत्ति से बुराइयों के त्याग की अवस्था प्राप्त होगी। इस त्याग से शुभ गुणों के ग्रहण की शक्ति आकर अन्तःकरण शुद्ध हो जायेगा। अन्तः-करण की शुद्धि से प्रभुभक्ति में एकाग्रता होकर आनन्द रस आयेगा और अन्त में आत्मदर्शन होगा।

—: ६ साधन :—

मनुष्य के पास दान के ६ साधन हैं। तन, मन, धन, अन्न, बल, ज्ञान। जिसके पास जो सामर्थ्य है, उसका नित्यप्रति दान करता है, उस अपनी सामर्थ्य की शुद्धि निमित्त नम्र और दीन होकर, न कि अहंकार भाव से।

जिनके पास कुछ नहीं, वह २४ घण्टे में अपने तन से तथा खाली समय में घड़ी दो घड़ी अवश्य लोक सेवा करे। योगी जन मन से, विद्वान् ज्ञान से, वैश्य अन्न और धन से अनखुट दान करे। जिस दिन से वह

दान का आरम्भ करे, उससे पूर्व कुछ संग्रह करले। वह संग्रह किया हुआ किसी समय भी कम न होने पाये। जो रोजाना आय निकाले उसमें से कुछ दे और कुछ संग्रह में मिला दिया करें। ऐसी प्रतिज्ञा कर लेवें कि बिना दान दिये अन्न न खावेंगे या विश्राम न करेंगे। ऐसी वृत्ति दानी मनुष्य को मुख्य प्राण में प्रवेश करायेगी, और उससे त्याग करने की शक्ति आवेगी।

मनुष्य का बड़ा कवच वाणी और हाथ है। चाहे मनुष्य इससे नेक कर्म करे, चाहे बुरे। यही मनुष्य को छुड़ाने वाले और यही फंसानेवाले हैं। मनुष्य को स्वतन्त्रता प्राप्त करानेवाले यही और उसके साधन हैं। संसार के प्रेमभाजन बनो या घृणास्पद। इसीलिए संध्या के अंगस्पर्श में वाक्-वाक् से आरम्भ हुआ और करतल करपृष्ठे पर समाप्ति हुई।

अनखुट दान में पांच प्रकार का दान अन्न और वाणी के अधीन है—तन, अन्न, बल, धन, ज्ञान से दान। किसी को बांधना हो तो हाथ से बांधेंगे। किसी का बन्धन काटना हो, छुड़ाना हो, तो हाथ से। मनुष्य के जीवन को स्याह सफेद बनानेवाले यही साधन हैं। इसलिये ऐ मानव! इन दोनों को खूब खोल और

चमका। सत्य बोलना वाणी से और सत्य करना हाथ से।

सन्ध्या का दूसरा मन्त्र अंगस्पर्श सचमुच है ही द्विजों के लिए। जितने स्थान स्पर्श के हैं वह सब ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के स्थान ही हैं। शूद्र तो नीचे दबा पड़ा है आसन में। यश और बल पा ही द्विज सकते हैं। शूद्र किस चीज़ से यश और बल प्राप्त करे, हां पवित्रता का अधिकारी शूद्र भी है जो केवल तप से प्राप्त करता है, 'तपः पुनातु पादयोः'।

आदेश सा प्रतीत हुआ, बड़े जोरदार शब्दों में हाथ के दान की किसी दिन गैरहाजिरी न करो। तत्काल मेरा ख्याल प्रथम डा० चन्द्रभान की ओर फिर गणपति की तरफ गया। गणपति कैसे हाथ से धन का दान नित्यप्रति करे, जिसे महीनों आमदन नहीं होती हो तो फौरन मैं कह रहा हूँ कि गणपति ! कुछ भी न बन सके चुटकी भर आटा और खांड शक्कर जो भी हो चिऊंटियों के बिल में डाल दिया करो। अधिक नहीं एक पैसा नकद किसी अर्थी को दे दिया करो, भावना अवश्य बनी रहे। किसी दिन हाथ के दान की गैरहाजरी अन्न, धन, से न होने पावे। डाक्टर जी अपनी आय का अनुमान करलें, वरना एक रुपया दैनिक

तो दाव कर ही सकेंगे।

जब छोटा बड़े के अधीन होता है, अर्थात् अपने अहंकार को अर्पण करता है, तब प्रेम भक्ति के प्रभाव से छोटे का मस्तक बड़े के चरणों में निहायत खुशी और प्रेम से झुक जाता है। दोनों की प्रसन्नता एक समान घुल मिल जाती है। जब बड़ा छोटे को अहंकार अर्पण करता है, तो बड़ा छोटे के सिर को चूमता है, सिर पर हाथ फेरता है, यहां तक कि उसे कन्धे पर, सिर पर, चढ़ा देता है। और जब बराबर वालों को अहंकार अर्पण होता है तो बड़े वेग से छाती से छाती, हृदय से हृदय को मिलाकर अत्यन्त प्रेम और प्रसन्नता को प्रकट करते हैं।

प्रभु का निवास कर्म के रूप में हृदय में होता है, ज्ञान के रूप में मस्तिष्क में और भक्ति प्रेम के रूप में सारे शरीर में परन्तु निवास चरणों में होता है।

एक सन्त गद्दी पर बैठा है बहुत लोग बैठे हैं। एक तार्किक उठा, प्रश्न किया! आपने प्रभु को साक्षात् कर लिया, देख लिया है?

सन्त—तो क्या आप इन मनुष्यों के स्वरूपों को ठीक देख रहे हैं?

तार्किक–हां, सबको ठीक-ठीक देख रहा हूँ।

सन्त–तो क्या आप अपने स्वरूप को भी देख रहे हैं ?

तार्किक–नहीं, हां मैं जान रहा हूँ कि मैं ऐसा हूँ, परन्तु देख नहीं रहा ।

सन्त–तो बस जब तक अपने को नहीं देखता, तो प्रभु को कैसे देख सकता है ।

तार्किक–तो क्या आपने अपने को और प्रभु को भी देख लिया ?

सन्त–हां मैंने देख लिया है, अपने आपको । और जान लिया है अपने आपको ।

तार्किक–आपने क्या जाना, और क्या देख लिया ?

सन्त–यही कि मैं कुछ भी नहीं हूँ बिन्दु समान, तुच्छ अत्यन्त तुच्छ हूँ ।

तार्किक–तो आप सबसे ऊंचे क्यों बिठाये गये ?

सन्त–यही शास्त्र के मर्म की बात है । पवित्र ओं का स्वरूप भी शुद्ध नहीं होता अगर बिन्दु ऊपर न बिराजे । देखो ! 'ओं' में अ+उ दोनों मिलकर भी अपने शुद्ध रूप में प्रकट न हो सके । जब तक तुच्छाति-तुच्छ बिन्दु को ऊपर नहीं बिठाया । प्यारे जब तक मनुष्य उस प्रभु के सामने अपने को तुच्छातितुच्छ नहीं

मानता तब तक वह अपने को जानता हुआ भी, कि मैं हूँ, देख नहीं सकता। जब तक देखता नहीं तब तक उसे ऊंचा सिंहासन प्राप्त नहीं होता। अब जब अ+उ के साथ म् अवाक् होगई तो बिन्दु समान 'ओं' का साक्षात् है।

आं राकि खबरशुद, खबरश बाज नया।

श्रद्धालु जिज्ञासु—आपने इसे कैसे पाया, देखा, जाना?

सन्त—मेरा मन अहंकार वृत्ति को लिये एक धनी के पास पहुँचा। बड़े-बड़े ऊंचे महल, अटारियां, गाड़ियां नौकर चाकर शाही सामान देखें, मुकाबला किया। कहा इसके सामने मैं तुच्छ मात्र भी नहीं।

फिर किसी दानी के द्वार पर गया, जहां यात्रियों की पंक्तियां खड़ी थीं, अन्न, जल, द्रव्य, वस्त्र, बड़े जोर से बंट रहा था। लोग दुआएं दे रहे थे। मेरे मन नें कहा मैं कुछ भी नहीं।

फिर ज्ञानी के पास पहुँचा, वहां बड़े-बड़े विद्वान शास्त्रचर्चा कर रहे थे। उनकी बात समझने की भी योग्यता न पाई। मैंने कहा—ओहो, यहां मैं शून्य से भी हेच हूँ, जिसे गोल अण्डा कहते हैं।

फिर एक गुफा में गया, जिसमें काल से ध्यानी

समाधिस्थ हैं। पूछा तो कहा—वर्षों से समाधिस्थ हैं, ऊपर घास जम गई है। मेरे मन ने कहा—तू शून्य भी नहीं। यह तो तूने देखे मनुष्य, जो अभी देखने और सुनने में आते हैं। वह जो इन इन्द्रियों से परे न देखे जाने वाला और न सुना जानेवाला है उसके सामने तू क्या हस्ति रखेगा ?

बस प्यारे ! मेरा मन अहंकार रहित होगया और कहने लगा—प्रभो अब तेरी शरण पड़ गया। मैं हार गया, तू जीत गया। यह जो 'म्' प्रकृति माया की मैं थी, मैं हटकर शून्य चरणों में रह गई। अब प्रभु ने देखा, अब उस बेहिस बेजान बिन्दु को कहां छोडूँ, निराश्रय अपना आश्रित समझ 'ओं' उड़ान के ऊपर उठा दिया।

समाप्तम्।

अन्तिम प्रार्थना

हे परम श्रेय ! तुम ही परम श्रेयस् हो। मुझ में जो श्रेयस् है, वह सब आपका ही है। इसलिए तो मनुष्य जाति सबसे श्रेय है और यही ही श्रीमान् है। आपके महायज्ञ से मेरा शरीर बना है। क्षण-क्षण पल रहा है। आप ही सच्चे याज्ञिक हैं मेरी नाड़ियों के अन्दर जो रक्त बह रहा है वह (रक्त) आप ही के यज्ञ का फल है। मेरी हड्डियां, मेरा मांस, मेरी त्वचा, बाल, खाल सब चर्बी और मज्जा, मेधा, वीर्य और रस तेरे ही यज्ञ से बने हैं। तेरे अमृत यज्ञ के प्रसाद यज्ञ के शेष से जुड़ रहे हैं। फिर नाथ ! यदि मेरा यह शरीर यज्ञ के लिए न बना तो राक्षस कहलायेगा।

मेरा जीवन मेरा विचार यज्ञरूप हो। प्रभो ! मेरा आहार मेरा विचार और आचार स्वयं यज्ञ बन जाए, जब शरीर में बिन्दु-बिन्दु तेरे यज्ञ के भाग की है, यज्ञ के शेष की है भगवन् ! मेरी इन्द्रियों पर आपका ही अधिकार हो ! मेरे प्राण, बल आपके वश में हों। मेरा श्वास-श्वास तेरे नाम की माला बन जाए, मेरा

अङ्ग-अङ्ग तेरी ज्योति का झकोरा बन जावे और मैं, मेरी आत्मा यज्ञस्वरूप हो और मेरी 'मैं' का बाकी जो कुछ भी हैं शरीर और शरीर के सम्पूर्ण कार्य जो स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर से हों वह संसार के हृदयों के लिए यज्ञशेष बनकर व्यय हों। हे भगवन् ! मैं बड़ा ही सौभाग्यशाली होऊंगा, यदि मेरी इस प्रातः की प्रार्थना को स्वीकार करलो और मुझे ऐसा बना दो। मैं स्वयं ऐसा नहीं कर सकता, जैसा मेरा यह विचार है। यदि यह विचार तेरी कृपा तेरी अमृत वर्षा से भीग जाए तो संसार को सींच सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिये प्रभो ! मेरी सफलता पूर्णतया आपके आधीन है। मैं तेरे ही आधीन हूँ, तेरा आश्रित "प्रभु आश्रित" हूँ। अब अपने आश्रित को अपने नाम के नाते आप नाम की लाज पालने के लिए उभारो, निहारो। स्वामी हो ! स्वामी हो !! स्वामी हो !!!

—टेकचन्द, प्रभु आश्रित

निवेदन

स्वर्गीय श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज आधुनिक युग के परम तपस्वी, कर्मठ योगी एवं वैदिक मिशनरी थे जिन्होंने अपना सारा जीवन गायत्री अनुष्ठान, वेद यज्ञ तथा योग के प्रचार-प्रसार में लगा दिया। आपकी प्रेमभरी वाणी बड़ी कोमल मधुर तथा सरल थी और लेखनी अत्यन्त प्रभावशाली। जटिल से जटिल तथा गूढ़ विषयों को महात्मा जी ने बड़ी सुगम तथा रोचक भाषा में सुलझाया है। यही कारण है कि सर्वसाधारण ही नहीं विद्वान् भी आपकी रचनाओं का सम्मानपूर्वक अध्ययन करते हैं।

श्री महाराज जी १६-३-६७ ई० को ब्रह्मलोक सिधार गए थे। किन्तु उनका साहित्य आज भी हमारा पथ प्रदर्शन कर रहा है। महाराज जी की कृत लगभग ६ दर्जन पुस्तकों में आध्यात्मिक मार्ग का निरूपण किया गया है तथा हर पुस्तक के कई-कई संस्करण छप चुके हैं और मांग बनी रहती है। इन पुस्तकों का मूल्य लगभग लागत मात्र रखा गया है ताकि सर्वसाधारण इनसे अधिकाधिक लाभ उठा सकें। हमारा ध्येय धर्म प्रचार है, धन कमाना नहीं।

अतः सब धर्म-प्रेमियों से प्रार्थना है कि इन पुस्तकों का स्वयं अध्ययन करें तथा दूसरों तक पहुंचा कर पुण्य के भागी बनें।

श्री १०८ ब्रह्मलीन पूज्यपाद गुरुदेव महात्मा प्रभुआश्रित जी महाराज के अनुपम, प्रेरक और जीवन-निर्माणकारी उपदेशों का संग्रह इस पुस्तक में है। इसके प्रथम संस्करण की भूमिका में पूज्य स्व० श्री सत्यभूषण जी आचार्य ने बहुत विस्तार से चर्चा की है कि किन-किन कठिनाइयों और बाधाओं के होते हुए भी इस पुस्तक के प्रथम संस्करण का विक्रमी सं० २००९ में प्रकाशन हो सका था। अब पुनः श्रद्धालु पाठकों, प्रेमियों विशेषकर श्री रायरत्न लाल जी की अनेकशः प्रेरणा पर इसका प्रकाशन हो रहा है।

दयालु प्रभुदेव से प्रार्थना है कि वे उन श्रद्धालुओं को श्रद्धा भक्ति का दान दें तथा सभी पाठकों को अपने आशीर्वाद से कृतकृत्य करें।

निवेदक—प्रभुभिक्षुः

सफला एकादशी
पौष मास
२०५३ वि०

कृते—महा० प्रभुआश्रित साहित्य
प्रकाशन विभाग
वै० भ० साधन आश्रम
रोहतक-१२४००१

पूज्य गुरुदेव महा० प्रभु आश्रित जी महाराज द्वारा लिखित पुस्तकों की सूची

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
गायत्री रहस्य	25-00	गृहस्थ सुधार	24-00
दृष्टान्त मुक्तावली	15-00	मन्त्र योग भाग 1 और 2	15-00
पृथिवी का स्वर्ग	10-00	मन्त्र योग भाग 3 और 4	12-50
यौगिक तरंगें	5-00	गृहस्थाश्रम प्रवेशिका	6-00
चमकते अंगारे	4-00	वर घर की खोज	6-00
जीवन सुधार	6-00	विचार विचित्र	4-00
मनोबल	6-00	योग ‍ধু'	6-00
जीवन निर्माण	5-00	सेवाधर्म	6-00
जीवन यज्ञ	7-00	स्वप्न गुरु तथा देवों का शाप	4-00
सौम्य सन्त की प्रार्थनाएं	5-00	निराकार साकार पूजा	3-00
व्रत अनुष्ठान प्रवचन	2-00	एक अद्भुत किरण	1-50
गायत्री कुसुमाञ्जली	2-00	निर्गुण सगुण उपासना	3-50
बिखरे सुमन	5-00	जीवन गाथा	5-00
समाज सुधार	1-50	दुर्लभ वस्तु	2-00
साधना प्रचार	5-00	भाग्यवान गृहस्थी	1-25
अमृत के तीन घूंट	2-00	संभलो	1-00
आदर्श जीवन	5-00	हवन मन्त्र	3-00
उत्तम जीवन	1-50	जीवन चरित्र पहला भाग	2-00
आत्म चरित्र	9-50	डरो वह बड़ा जबरदस्त है	6-00
पावन यज्ञ, प्रसाद	2-00	रहस्य की बातें	10-00
जीवन चरित्र चौथा भाग	3-00	योग दर्शन	8-00
अध्यात्म सुधा भाग चार	18-00	सामवेद	50-00
कर्म भोग चक्र	15-00	यजुर्वेद	60-00

(विशेष शताब्दी पुस्तकें)

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
प्रभु का स्वरूप	12-00	यज्ञ रहस्य	16-00
आत्म कथा महा० प्रभुआश्रित जी की	14-00	सन्ध्या सोपान	14-00

ग्रेजुएट प्रेस, बजरंग भवन के पीछे देहली रोड, रोहतक। फोन : 42673